मुद्रक—प्रकाश प्रिंटिंग वर्क्स,
३, क्लाइव रोड,
इलाहाबाद

—

विषय-सूची

प्रवचन

हिन्दी भाषा से तात्पर्य उन सभी बोलियों से है जो आर्य्यावर्त में बोली जाती हैं। हिन्दी के अन्तर्गत नीचे लिखी मुख्य-मुख्य बोलियाँ आती हैं।

हिन्दी का विस्तार

१—राजपूताने की भाषाएँ—मेवाड़ी, मेरवारी, जयपुरी, हाड़ौती।

२—पहाड़ी भाषाएँ—गढ़वाली, कुमाउनी, नैपाली।

३—दोआवे की भाषाएँ—ब्रजभाषा, बुंदेली, कन्नौजी, खड़ी बोली।

४—पूर्वी भाषाएँ—अवधी, भोजपुरी, बघेली, मगही, मैथिली।

हिन्दी की उत्पत्ति

हिन्दी तथा उसके अन्तर्गत सभी बोलियों की उत्पत्ति उसी आर्य्य भाषा से हुई है जो भारत में प्राचीन काल में बोली जाती थी। हिन्दी भाषा के विकास और उत्पत्ति के पूर्व भारत में अपभ्रंश, प्राकृत और संस्कृत का प्रचार था। आर्य्यों की भाषा वैदिक संस्कृत थी। इसी भाषा में हमारे वेदों की रचना हुई है। जब इस भाषा में अनार्यों और विदेशियों के सम्पर्क से अव्यवस्था आने लगी तो उन्होंने व्याकरण द्वारा इस भाषा को परिमार्जित और संस्कृत बना दिया। आगे चलकर इस भाषा का नाम ही 'संस्कृत' अर्थात् 'संस्कार की हुई भाषा' पड़ गया। इसी संस्कृत में प्राचीन साहित्य लिखा गया है। इधर संस्कृत का प्रचार बढ़ा, उधर बोलचाल की भाषा विकसित होकर क्रमशः 'पाली' और 'प्राकृतों' के रूप में प्रकट हुई। 'पाली' का नमूना हमें अशोक के शिलालेखों में मिलता है और संस्कृत के नाटकों में अनेक प्रकार की प्राकृतों का। धीरे-धीरे संस्कृत का प्रचार कम हुआ और प्राकृत का प्रचार बढ़ा; साहित्य इसी में लिखा जाने लगा। इसके व्याकरण बने

और पीछे अच्छे-अच्छे ग्रन्थ इसमें लिखे गये। इसी काल में अहीर आदि पीछे की आई हुई आर्य्य जातियों की बोली 'अपभ्रंश' का भी प्रचार बढ़ा। इसी प्राकृत और अपभ्रंश से आगे चलकर पुरानी हिन्दी और पीछे आधुनिक हिन्दी की उत्पत्ति हुई है। जहाँ आजकल हिन्दी का प्रचार है वहाँ प्राचीन काल में भिन्न-भिन्न प्राकृतों और अपभ्रंशों का प्रचार था। संक्षेप में हिन्दी के विकास का क्रम यों है १—मूल आर्य्य भाषा या वेदों की भाषा। २—अशोक के शिलालेखों की भाषा। ३—बौद्ध ग्रंथों की भाषा। ४—जैन ग्रंथों की भाषा। ५—पुरानी हिन्दी। ६—आधुनिक हिन्दी।

हिन्दी का विकास

हिन्दी भाषा का जन्म किस समय हुआ ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता है, पर जहाँ तक पता चलता है ८ वीं ईसवी शताब्दी से हिन्दी का स्वरूप दिखाई पड़ता है। पुरानी हिन्दी का सब से प्राचीन रूप कवि देवसेन (संवत् ९९० सन् ९३३) रचित 'दर्शन-सार' में मिलता है। यथा

> जइ मणिला माणस सयहि, कुल्लहु जुव्व-इसंहु।
> जिह ओयद भवल गयद, मणु नचणु संबंध॥

देवसेन के पश्चात् पुष्पदंत (संवत् १०२९), श्रीचंद्र (संवत् १०६६) और [illegible] (११ वीं ईसवी शताब्दी) के ग्रंथों में पुरानी हिन्दी का रूप मिलता है। इस ११ वीं शताब्दी में राजा मुंज ने हिन्दी भाषा में कविता की है। उनके दोहे 'प्रबन्ध चिन्तामणि' नामक ग्रंथ में मिलते हैं। उदाहरणार्थ यह दोहा—

> बांह बिछोड़वि जाहि तुहुं, हंउ तेवंइ को दोसु।
> हिअयट्ठिय जइ नीसरहि, जाणउं मुंज सरोसु॥

राजा भोज (संवत् १०५२-५४) ने भी कुछ दोहे रचे हैं, जिनकी भाषा पुरानी हिन्दी है; उदाहरणार्थ यह दोहा—

जइ यह रावण जाईयउ, दहमुह इक्कु सरीरु।
जणणि वियम्भी चिंतवइ, कवणु पियावउँ खीरु ॥

हिन्दी साहित्य का विकास

हिन्दी भाषा की किस समय उत्पत्ति हुई, उसका क्रमशः विकास कैसे हुआ यह हम ऊपर देख चुके। यों तो हिन्दी भाषा के विकास के साथ-साथ हम उसका रूप साहित्य में देखते हैं, पर यह एक प्रकार से प्रासंगिक है। अभी तक किसी कवि ने 'हिन्दी' में किसी ग्रंथ की रचना का साहस नहीं किया था। केवल संयोग से कुछ लोगों ने फुटकर कविता कर डाली थी।

हिन्दी साहित्य के विभाग

हिन्दी साहित्य का विस्तार-काल हम ईसवी ११ वीं शताब्दी से आज तक (बीसवीं शताब्दी) मान सकते हैं। इन नौ सौ वर्षों के समय को हम साहित्य की दृष्टि से निम्नलिखित कालों में बाँट सकते हैं।

आरंभ-काल—११ वीं से १४ वीं शताब्दी तक।
मध्य-काल—१४ वीं से १८ वीं शताब्दी तक।
आधुनिक-काल—१८ वीं शताब्दी से वर्तमान काल तक।

आरंभ काल में विशेषतः हमारे साहित्य में 'चारण काव्य' मिलते हैं। इसे 'चारण-काव्य काल' या 'वीर-गाथा-काल' भी कहते हैं। मध्य-काल में कई प्रकार के काव्य मिलते हैं। राम सम्बन्धी, कृष्ण सम्बन्धी, निर्गुण या एकेश्वरवादी, आख्यान, अलंकार सम्बन्धी तथा फुटकर। आधुनिक काल में विशेषतः गद्य काव्य की रचना हुई है। शृंगार आदि की भी कुछ चर्चा रही है।

हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

आरंभ काल

सम्राट् हर्षवर्धन की मृत्यु के पश्चात् उसका विशाल साम्राज्य छि भिन्न हो गया और उसके ध्वंसावशेष पर बहुत छोटे-छोटे राज्यों की उत्पत्ति हुई। ये राज्य धीरे-धीरे नष्ट हो गये। एक शताब्दी तक उत्त भारत में कोई ठिकाने का शासन न रहा। इतिहास लेखकों ने इसे 'अन्धक युग' लिखा है। इस काल में एक नई शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ आगे चलकर भारत को अपने वश में करने में समर्थ हुई। उस शा का नाम था राजपूत शक्ति। राजपूताने में बसने वाली इस लड़ाकू जा ने अपने बाहुबल से घरेलू उपद्रवों को नाश कर क्रमशः राजदण्ड व करने का अधिकार प्राप्त किया और एक सौ वर्ष के भीतर ही उस उत्तरापथ (आर्य्यावर्त) के भिन्न-भिन्न स्थानों में अपना शासन-के स्थापित किया।

राजपूतों के सशक्त होने पर उनके दरबार में कवियों को आश्र मिलना स्वाभाविक था। उस काल में युद्ध-चर्चा से बढ़कर और को चर्चा न थी। यही कारण है कि उस काल की कविता अधिकत 'वीर-रस-प्रधान' है।

इस काल का साहित्य अधिकतर राजपूताने ही में रचा गया औ इसकी भाषा इसीलिए स्थानीय है। इस काल के कुछ मुख्य क ये हैं :—

नाम	समय	ग्रंथ
नरपति नाल्ह	१२१२ संवत्	वीसल्देव रासो
चन्दबरदाई	१२२५—५०	पृथ्वीराज रासो
जगनिक	,,	आल्हा

चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ में मुसलमानी राज्य ने दृढ़ता प्राप्त की। इसी के साथ-साथ हिन्दी साहित्य भी क्रमशः प्रौढ़ता को प्राप्त हुआ। इस काल में मुसलमानों का राज्य अपने वैभव और बल की पराकाष्ठा पर पहुँचा। इसी के साथ-साथ हिन्दी साहित्य भी अपनी उन्नति के शिखर पर पहुँचा। मुसलमानों के आने से भारत में कुछ काल के लिए धार्मिक उथल-पुथल हुआ। हिन्दू धर्म किसी अंश में संकट में पड़ा। ऐसी अवस्था में 'भक्ति' मार्ग के प्रतिपादक महात्माओं ने उसकी रक्षा की और यही कारण है कि इस समय का साहित्य अधिकतर भक्ति-मार्ग के प्रतिपादकों की कृति है।

माध्यमिक काल
१४००--१८००

माध्यमिक काल के साहित्य को हम निम्नलिखित भागों में बाँट सकते हैं :—

१—राम सम्बन्धी कविता।
२—कृष्ण सम्बन्धी कविता।
३—निर्गुणवादी या एकेश्वरवादी।
४—आख्यानक काव्य।
५—आलंकारिक काव्य तथा फुटकर।

राम सम्बन्धी

राम सम्प्रदाय के प्रवर्तक रामानुजाचार्य्य थे। इनका जन्म सम्वत् १०७३ में हुआ था। ये दक्षिण के रहने वाले थे। इनके गुरु स्वामी शंकराचार्य्य थे। इन्हीं रामानुज ने वैष्णव मत का प्रचार किया। इनके पश्चात् रामानन्द ने इसका प्रचार किया। ये प्रयाग में संवत् १३५६ में पैदा हुए थे।

रामानन्द के जीवन-काल में भारत का राजनैतिक नभ-मंडल भयानक प्रलयकारी मेघों से घिरा था। हिन्दू प्रजा को अनेक कष्ट सहने

पढ़ते थे। इनके जन्म-काल ही में अलाउद्दीन ने चित्तौर की रानी पद्मिनी की रूप चर्चा सुनकर, उस पर मुग्ध होकर चढ़ाई की थी। संवत् १३६७ में रामेश्वर में पहले-पहल मसजिद बनाई गई। संवत् १३८२-१४०८ में मुहम्मद तुगलक दिल्ली की राजगद्दी पर बैठा। उसने अपने पागलपन में दिल्ली से राजधानी उठाकर दौलताबाद में स्थापित की। प्रजा पर घोर अत्याचार हुए। ये सब बातें रामानन्द के लड़कपन में हुईं। इनके बुढ़ापे में तैमूर लंग का आक्रमण हुआ, उसके अत्याचारों की चर्चा से इतिहास के पृष्ठ रंगे पड़े हैं। ऐसी अवस्था में स्वभावतः रामानन्द की प्रवृत्ति ऐसी 'भक्ति' की ओर झुकी जो लोक-परलोक दोनों में सहायक होती। यही कारण था कि आगे चलकर दुष्टों का संहार करने वाले, दीनन-दुख-हरन श्रीरामचन्द्र की भक्ति का प्रवाह बढ़ा। रामानन्द जी के बाद उनके शिष्यों ने 'रामभक्ति' का प्रचार किया। कहते हैं, रामानन्द जी सौ वर्ष के ऊपर की अवस्था को प्राप्त हुए।

इसी सम्प्रदाय में आगे चल कर तुलसीदास जी (संवत् १६३१—१६८०) हुए उन्होंने 'रामचरित मानस' के अतिरिक्त अन्य १२ ग्रन्थों की रचना की है। इनका 'रामचरित मानस' आजकल भारत में सब का प्रिय ग्रन्थ हो रहा है। हिन्दूमात्र के घरों में इसका प्रचार है। तुलसीदास जी के टक्कर की कविता कदाचित् ही किसी अन्य कवि ने की हो। साहित्य की दृष्टि से भी 'रामचरित मानस' से बढ़कर अन्य कोई ग्रन्थ हमारी भाषा में नहीं है। तुलसी के बाद उस सम्प्रदाय में कोई और ऐसा कवि नहीं हुआ जिसका उल्लेख किया जा सके।

भक्ति-मार्ग की एक शाखा ने इधर 'राम' को अपना इष्टदेव माना,

कृष्ण सम्बन्धी काव्य

उधर दूसरी शाखा ने 'कृष्ण' को अपना आराध्य-देव बनाया। इस शाखा का केन्द्र मथुरा तथा ब्रज था। महात्मा वल्लभाचार्य इसके प्रवर्तक

थे। उनके आठ शिष्यों में से सूरदास जी ने ब्रजभाषा में 'सूरसागर' की रचना की। इनका समय संवत् १५६० माना जाता है। इस संप्रदाय के कवियों में 'सूर' के टक्कर का कोई कवि नहीं है। इनके अतिरिक्त अन्य कविगण भी हैं जैसे कृष्णदास, परमानन्ददास, कुम्भनदास, चतुर्भुजदास, प्रीतस्वामी, नन्ददास और गोविन्ददास। सूरदास को लेकर इन आठ कवियों को 'अष्टछाप' के नाम से पुकारते हैं।

निर्गुणवादी कवि

इधर भक्ति सम्बन्धी चर्चा हो रही थी, उधर कुछ लोग हिन्दू-मुसलमानों के तथा अन्य सांप्रदायिक झगड़ों के मिटाने के लिये 'एक ईश्वर' का पाठ पढ़ाते थे। इनका कहना था कि वास्तव में एक ही परमात्मा है जिसे यदि हम ढूँढ़ें तो अपने में पा सकते हैं। व्यर्थ के आडम्बर को ये लोग बुरा कहते थे।

आख्यानक कवि

माध्यमिक काल के रामकृष्ण के चरित्र-गान के प्रवाह के बीच आख्यानक काव्य भी पनप रहा था। कुछ सूफी सम्प्रदाय के मुसलमान फकीरों ने इसका आरम्भ किया था। इस प्रकार के काव्य में कवि मलिक मुहम्मद जायसी का 'पद्मावत' नामक ग्रंथ सब से श्रेष्ठ है।

आख्यानक काव्य के लिखने वाले हिन्दू भी थे, पर उनकी रचनाएँ उतनी अच्छी नहीं है। सूफी मत के मानने वाले मुसलमान फकीरों ने इसमें अच्छी सफलता पाई है। इन्होंने मनोरंजक प्रेम गाथाओं के द्वारा आध्यात्मिक सिद्धान्तों की अच्छी चर्चा की है। वे अधिक पढ़े लिखे न थे, पर इन्होंने सूफी सिद्धान्तों के प्रचार के हेतु चलती हुई भाषा में हिन्दी काव्य की रचना की है।

आलंकारिक काव्य

अलंकार-प्रधान कविता के आदि लेखक केशवदास जी थे। इन्हें लोग 'प्रथम अभक्त शृंगारिक कवि' मानते हैं। उनके लिखे कविप्रिया, रसिकप्रिया और

रामचन्द्रिका नामक ग्रन्थ बड़े उत्तम माने जाते हैं। इनका जन्म-काल संवत् १६४८-६८ है। इनके अतिरिक्त प्रवीणराय, नाभादास, मुबारक, लटमल आदि हैं। इसी काल में कवि बिहारी लाल ने प्रसिद्ध 'सतसई' की रचना की, सेनापति ने अपना षट्ऋतु लिखा। महाकवि भूषण ने, जो शिवाजी के आश्रित थे, शिवराज भूषण और शिवाबावनी नामक ग्रन्थों की रचना की। इस काल में 'भूषण' ही केवल ऐसे थे जिन्होंने शृंगार पर कुछ न लिख कर केवल वीर रस लिखा है। इनकी कविता भी रीति काव्य की श्रेणी में आती है। कवि देव ने (१७५१-७०) तक कई अच्छे-अच्छे ग्रन्थ लिखे हैं।

इस वर्ग के कवियों ने अधिकतर षट्ऋतु, अलंकार और नायक-नायिका भेद आदि पर ग्रन्थ लिखे हैं। इस प्रकार की कविता की उत्पत्ति का कारण मुसलमान शासन की सुव्यवस्था और दरबारों की विलासिता थी। साहित्य की दृष्टि से यही आगे चलकर उसकी उन्नति में बाधक हुई है।

आधुनिक काल १८०० से

आधुनिक-काव्य-काल का आरम्भ अँगरेजी राज्य के आगमन से होता है। मुसलमानी शासन के मिटने के साथ साथ हिन्दी साहित्य का ह्रास हुआ। साहित्य का प्रायः लोप हो चला। कवियों की प्राचीन पद्धति मिट चली। जब अँगरेजी राज्य स्थापित हो गया तब साहित्य में भी नवीन स्फूर्ति दिखाई पड़ने लगी। इस काल में गद्य का विकास हुआ। इसके पूर्व एक प्रकार से गद्य साहित्य का अभाव था। अधिकतर रचनाएँ पद्य में होती थीं। अँगरेजों के आने पर भारतीय विचारों में बहुत कुछ परिवर्तन हुआ। संवत् १८५० के लगभग अँगरेजों ने कलकत्ते में एक कालिज खोला, जिसका नाम फोर्टविलियम कालिज था। इसमें अनेक विद्वान् बुलाये गये। अँगरेजों ने इनसे खड़ी

बोली में ग्रन्थ लिखवाये। उन्हीं में सदल मिश्र और लल्लू लाल जी भी थे, जिनका 'प्रेमसागर' अब भी बड़े चाव से पढ़ा जाता है।

वर्तमान हिन्दी के जन्मदाता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र माने जाते हैं। इन्होंने हिन्दी की बड़ी उन्नति की। आजकल के साहित्य का मार्ग दिखलाने वाले ये ही थे। इनका समय संवत् १९२६-४६ है। इनके पूर्व और पश्चात् अन्य बहुत से लेखक हुए हैं जिनमें कुछ के नाम उल्लेखनीय हैं—

पूर्व के राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद सं० १९११, राजा लक्ष्मणसिंह सं० १९१७, स्वामी दयानन्द जी सं० १९२०।

पश्चात् बालकृष्ण भट्ट, शिवसिंह सेंगर आदि।

वर्तमान युग में कविता की भाषा खड़ी बोली हो रही है। ब्रजभाषा की कविता का प्रायः लोप हो रहा है। कविता के विषय और लेखन शैली में बहुत आधुनिकता आ गई है। इस समय अधिकतर कविता 'गीत-काव्य' की श्रेणी में आती है। 'प्रबंध-काव्य' लिखने वाले बहुत कम लोग हैं। गीत-काव्य में 'छायावाद' श्रेणी की कविता की प्रधानता है। इस काल के कुछ प्रमुख कवियों के नाम ये हैं—पं० रामचंद्र शुक्ल, जयशंकर 'प्रसाद', अयोध्या सिंह उपाध्याय, ठा० गोपालशरण सिंह, मैथिलीशरण गुप्त, बा० जगन्नाथदास रत्नाकर, वियोगी हरि, पंत जी, गुरु भक्ति सिंह, डा० रामकुमार वर्मा, महादेवी वर्मा, भगवती चरण वर्मा, निराला, दुलारे लाल भार्गव, हरिकृष्ण प्रेमी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सुभद्रा कुमारी चौहान, बच्चन आदि।

उपसंहार

संक्षेप में यह हमारी भाषा और साहित्य की उत्पत्ति और विकास का इतिहास है। इस विषय पर बड़ी-बड़ी किताबें लिखी गई हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास-ग्रन्थों को देखना चाहिये।

महात्मा सूरदास जी



(काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के चित्र से)

काव्य-कुंज

१—सूरदास

(जन्म सं० १५४०, मृत्यु सं० १६२०)

परिचय—इनका जन्म-स्थान आगरा और मथुरा के बीच माना जाता है। सम्भवतः ये सारस्वत ब्राह्मण थे। कुछ लोग इन्हें जन्मान्ध मानते हैं किन्तु कुछ का कहना है कि इन्होंने भगवान् कृष्ण के दर्शन होने पर अपनी आँखें आप ही फोड़ ली थीं जिससे लौकिक रूप ये न देख सकें। इनके काव्य में वस्तुओं का, विशेष कर रंगों का इतना स्वाभाविक वर्णन हुआ है कि इन्हें जन्मान्ध मानने में सन्देह होता है।

ये महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के शिष्य थे। गऊ घाट में इन्हें महाप्रभु के दर्शन हुये। वल्लभाचार्य जी ने इनको पुष्टि मार्ग में दीक्षित किया। भगवान श्रीकृष्ण की लीला का वर्णन भी सूरदास ने महाप्रभु की ही आज्ञा से किया था। वल्लाभाचार्य जी के पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ जी द्वारा स्थापित अष्टछाप के कवियों में सूरदास जी सर्वप्रधान थे।

प्रमुख रचनायें—

(१) सूरसागर (२) साहित्य लहरी (३) सूरसारावली। सूरसागर इनका प्रमुख ग्रन्थ है। साहित्य लहरी में दृष्टि-कूट हैं। सूरसारावली एक प्रकार से सूरसागर का सार है। नलदमयन्ती और व्याहलो ये दो ग्रन्थ और भी इनके नाम से प्रसिद्ध हैं, पर ये अप्राप्य हैं।

काव्यगत विशेषतायें—

सूरदास जी श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे। अतः इनके काव्य का विषय भगवान् श्रीकृष्ण का पावन चरित्र है। श्रीमद्भागवत की भाँति सूरसागर में १२ स्कंध हैं पर यह अनुवाद नहीं कहा जा सकता। भगवान् की कथा का आधार लेकर अपनी काव्य-प्रतिभा से सूर ने उसे एक सर्वथा नूतन स्वरूप प्रदान कर दिया है।

बालक श्रीकृष्ण का जैसा सजीव चित्रण हमें सूर में मिलता है वैसा चित्रण अन्यत्र दुर्लभ है। सूरदास जी को बालक श्रीकृष्ण की अन्तःप्रकृति का उद्घाटन करने में जो सफलता मिली है, वैसी गोस्वामी तुलसीदास को भी नहीं मिली। बालकों की चेष्टाओं और मनोवृत्तियों पर जितनी अन्धे कवि की नजर पड़ी उतनी और किसी की नहीं। शृंगार और वात्सल्य रस के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का बड़ा ही सरल चित्रण सूर ने किया है। भ्रमर गीत के प्रसंग मे कृष्ण-वियोगिनी गोपियों के मनोभवों के चित्रण के साथ साथ निराकार की उपासना का खंडन और साकार ईश्वर की उपासना का मंडन अत्यन्त मधुरता से हुआ है। इस प्रसंग में गोपियों के व्यंग-वचन हृदय में चुभने वाले हैं।

शैली और भाषा—

सूरदास जी महान् गायक थे। भावना में निमग्न होकर वे समय समय कृष्ण की लीला के पद गाया करते थे। इन्हीं गेय पदों का संकलन सूरसागर है। गीति-काव्य का प्रारम्भ संस्कृत कवि गीतगोविन्द-कार जयदेव ने किया। मिथिला की अमराइयों में कूज कर मैथिल कोकिल विद्यापति ने इस परम्परा को हिन्दी में अवतीर्ण किया, महाकवि और अन्धे गायक सूरदास ने ललित ब्रज भाषा में इसी शैली का विकास किया। राग रागिनियों का चुनाव इन्होंने रस के अनुसार ही किया

। आगे चलकर और कृष्ण-भक्त कवियों ने इसी शैली को अपनाया। सूर की भाषा निखरी हुई मधुर ब्रजभाषा है—यद्यपि यत्र-तत्र प्रचलित फारसी का भी प्रयोग हुआ है। सूरदास की कविता में हृदय के सहज उद्‌गार हैं। अतः उनकी शैली में कृत्रिमता नहीं पाई जाती। अलंकारों का प्रयोग भी चमत्कार प्रदर्शन के लिए न होकर अत्यन्त स्वाभाविक है। सूर के सम्बन्ध में निम्नलिखित दोहा अत्यधिक प्रसिद्ध है :—

"उत्तम पद कवि गंग के, उपमा को बरबीर।
केसव अरथ गँभीरता, सूर तीन गुन धीर॥"

१—सूरदास

बाल-लीला

[१]

जसोदा हरि पालने झुलावै।
हलरावै दुलराइ मल्हावै, जोइ-सोई कछु गावै॥
मेरे लाल को आउ निंदरिया, काहे न आनि सुवावै।
तू काहे न वेगसी आवै, तोको कान्ह बुलावै॥
कबहुँ पलक हरि मूँद लेत हैं, कबहूँ अधर फरकावै।
सोवत जानि मौन ह्वै ह्वै रही, कर‌करि सैन बतावै॥
इहि अंतर अकुलाइ उठे हरि, जसुमति मधुरे गावै।
जो सुख 'सूर' अमर मुनि दुर्लभ, सो नँद-भामिनि पावै॥

[२]

मेरो नान्हरिया गोपाल वेगि बड़ो किनि होहि।
इहि मुख मधुरे बचन हँसि कबहूँ, 'जननि' कहैंगे मोहि॥
यह लालसा अधिक दिन-दिन प्रति कबहूँ ईश करै।
मो देखत कबहूँ हँसि माधव, पगु द्वै धरनि धरै॥

हलधर सहित फिरै जब आँगन, चरन शब्द सुख पाऊँ।
छिन छिन छुधित जानि पय कारन, हौं हठि निकट बुलाऊँ॥
अगम निगम नेति करि गायो, सिव उनमान न पायो।
'सूरदास' बालक रस लीला, मन अभिलाष बढ़ायो॥

[३]

सोभित कर नवनीत लिये।
घुटुरुन चलत, रेंणु तनु मंडित मुख दधि लेप किये॥
चारु कपोल लोल लोचन, गोरोचन तिलक दिये।
लट लटकनि मनो मत्त-मधुप गन, मादक मदहि पिये॥
कठुला कंठ, बज्र, केहरि-नख, राजत रुचिर हिये।
धन्य 'सूर' एको पल या सुख, का शत कल्प जिये॥

[४]

कान्ह चलत पग द्वै-द्वै धरनी।
जो मन में अभिलाष करत ही, सो देखत नंद-घरनी॥
रुनुक-झुनुक नूपुर बाजत पग, यह अति है मनहरनी।
बैठ जात पुनि उठत तुरत ही, सो छवि जाय न बरनी॥
ब्रज-जुवती सब देखि थकित भईं, सुन्दरता की सरनी।
चिरजीवो जसुदा को नंदन, 'सूरदास' को तरनी॥

[५]

कजरी को पय पिअहु लाल तोरि चोटी बढ़ै।
सब लरिकन में सुन सुन्दर सुत, तो श्री अधिक चढ़ै॥
जैसे देखि और ब्रज-बालक, त्यों बल वैस बढ़ै।
कंस, केसि, वक वैरिन के उर, अनुदिन अनल उठै॥

यह सुन कै हरि पीवन लागे, ज्यों-त्यों लियो लढ़ै।
पुन पीवत ही कच टकटोवे, झूठे जननि रढ़ै ॥
अचवन पै तातो जब लाग्यो, रोवत जीभ डढ़ै ।
'सूर' निरखि मुख हँसत जसोदा सो उर ते न कढ़ै ॥

[६]

लाल यह चंदा लै लैहो ।
कमल-नयन बलि जाइ जसोदा नीचे नेकु चितैहो ॥
जा कारण सुत सुचि सुन्दर वर, कीन्हों इती अनैहो ।
सोइ सुधाकर देखि दमोदर, या भाजन में हैहो ॥
नभ ते निकट आनि राख्यो है, जलपुट जतन जोगैहो ।
लै अपने कर काढ़ि दमोदर, जो भावै सो कैहो ॥
गगन मंडल ते गहि आन्यो है, पंछी एक पठैहो ।
'सूरदास' प्रभु इती वात को कत मेरो लाल हठैहो ॥

[७]

मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायो ।
मोसों कहत मोल को लीनो, तू जसुमति कब जायो ॥
कहा कहौं एहि रिस के मारे, खेलन हौं नहिं जात ।
पुनि-पुनि कहत कौन है माता, को है तुमरो तात ॥
गोरे नंद यशोदा गोरी, तुम कत स्याम सरीर ।
चुटकी दै दै हँसत ग्वाल सब, सिखै देत बलवीर ॥
तू मोही को मारन सीखी, दाउहि कबहुँ न खीझै ।
मोहन को मुख रिस समेत लखि, जसुमति सुनि-सुनि रीझै ॥
सुनहु कान्ह बलभद्र चबाई, जनमत ही को धूत ।
'सूर' स्याम मोहि गोधन की सौं, हौं माता तू पूत ॥

[८]

खेलन अब मोरी जात बलैया।
जबहिं मोहि देखत लरिकन सँग, तबहिं खिझत बलभैया ॥
मोसों कहत तात बसुदेव को, देवकि तेरी मैया ।
मोल लियो कछु दे वसुदेव को, करि-करि जतन बढ़ैया ॥
अब बाबा कहि कहत नन्द सो जसुमति को कहै मैया।
ऐसेहि कहि सब मोहि खिझावत, तब उठ चलो खिसैया ॥
पाछे नंद सुनत हैं ठाढ़े, हँसत हँसत उर लैया।
'सूर' नंद बलि-रामहि धिरयो, सुन मन हरष कन्हैया ॥

[९]

खेलत में को काको गोसैयाँ।
हरि हारे जीते श्रीदामा, बरबस ही कत करत रिसैयाँ ॥
जाति पाँति हम ते कछु नाहीं, न बसत तुम्हारी छैयाँ।
अति अधिकार जनावत यातें, अधिक तुम्हारे हैं कछु गइयाँ ॥
रूहठि करै तासों को खेलै, रहे पौढ़ि जहाँ-तहाँ सब गोइयाँ।
'सूरदास' प्रभु खेलोई चाहत, दाँव दयो करि नंद दोहैयाँ ॥

[१०]

मैया बहुत बुरौ बलदाऊ।
कहन लगे बन बड़ो तमासो, मौड़ा मिली आऊ ॥
मोहूँ को पुचकार गए लै, जहाँ सघन बन झाऊ।
भागि चले कहि गयो वहाँ ते, 'काटिखाई है हाऊ' ॥
हौंहू डरयौ, काँपौ, पुकारयौ दाऊ, कोउ नहि धीर धराऊ।
थरस गयों नहि भाग सकौं, वै भागै जात अगाऊ ॥
मोंसो कहत मोल को लानो, आपु कहावत साहु।
'सूरदास' बल बड़े चवाई, तैसे मिले सखाहु ॥

[११]

खेलन के मिस कुँवरि राधिका, नंद महर के आई हो।
सकुच सहित मधुरे करि वोली घर हौ कुँवर कन्हाई हो॥
सुनत स्याम कोकिल सम वानी, निकसे अति अतुराई हो।
माता सो कछु करत कलह हरि, सो डारयो विसराई हो॥
मैया री तू इनकों चीन्हति, वारंवार वताई हो।
जमुना तीर कालिह मैं भूल्यौं, वाँह पकरि ले आई हो॥
आवति यहाँ तोहिं सकुचति है, मैं दै सौंह बुलाई हो।
'सूर' स्याम ऐसे गुन आगर नागरि वहुत रिझाई हो॥

[१२]

वार-वार तू ह्याँ जिनि आवै।
मैं कहा करौं सुतहि नहिं वरजति, घरते मोहि वोलावै॥
मोसो कहत तोहि विनु देखे, रहत न मेरो प्रान।
छोह लगनि मोको सुनि वानी, महरि तिहारी आन॥
मुँह पावनि तवहीं लों आवति, औरे लावति मोहिं।
'सूर' समुझि जसुमति उर लाई, हँसति कहति हौं तोहिं॥

[१३]

हँसत सखनि यह कहत कन्हाई।
जाइ चढ़ौ तुम सघन द्रुमनि पर, जहँ-तहँ रहो छिपाई॥
तब लौं बैठि रहौ मुँह मूँदे, जब जानहु अब आई।
कूदि परौ द्रुमनि-द्रुमनि तैं, दै-दै नंद दोहाई॥
चकित होहिं जैसे जुवती-गन, डरनि जाँहि अकुलाई।
वेनु, विषान, मुरलि, ध्वनि कीजो, शंख शब्द घहनाई॥
तिन प्रति जानि हमारे मारग इह कहियो समुझाई।
'सूर' स्याम माखन दधि दानी, यह सुधि नाहिन पाई॥



गोस्वामी तुलसीदास

२—तुलसीदास

(जन्म सं० १५८६ मृत्यु सं० १६८०)

परिचय—

इनका जन्म बाँदा के राजापुर गाँव में बतलाया जाता है। ये केवल कवि ही नहीं थे अपितु परम मर्यादावादी भक्त एवं धर्मोपदेशक भी थे। इनके पिता का नाम आत्माराम और माता का हुलसी था। अभुक्त मूल नक्षत्र में जन्म लेने के कारण बाल्यकाल में ही माता और पिता द्वारा परित्यक्त हुये। अनेकानेक कष्टों को झेलते हुये इन्हें नरहरिदास जी का सहारा मिला। बड़े होने पर ये काशी चले गये जहाँ शेष सनातन नामक एक विद्वान् ने इन्हें वेद और शास्त्रों में पारंगत किया। पश्चात् इन्होंने गार्हस्थ्य जीवन में प्रवेश किया और कहा जाता है कि रामचरण की ओर इनके चित्त को लगाने वाली इनकी स्त्री रत्नावली थी। गृहस्थी से विरक्त होकर इन्होंने अनेक तीर्थों का परिभ्रमण किया और सं० १६३१ में काशी में श्री रामचरित मानस की रचना की। इनकी मृत्यु के सम्बन्ध में निम्नलिखित दोहा प्रचलित है:—

"संवत सोलह सौ असी, असी गंग के तीर।
सावन शुक्ला तीज शनि, तुलसी तज्यो शरीर॥"

रचनायें—

रामचरितमानस, विनय पत्रिका, गीतावली, कृष्ण गीतावली, कवितावली, जानकी मंगल, पार्वती मंगल, बरवै रामायण, दोहावली, रामलला नहछू आदि।

काव्यगत विशेषतायें—

गोस्वामी तुलसीदास जी समन्वयवादी थे। राम के परम भक्त होते हुए भी उन्होंने गणेश, शिव आदि अनेक देवी-देवताओं का गुणगान किया। शिव की भक्ति को उन्होंने रामोपासकों के लिए अनिवार्य कर दिया। इस प्रकार इस महाकवि ने उत्तर भारत में शैवों और वैष्णवों के झगड़ों को सदा के लिए शान्त कर दिया। ज्ञान, भक्ति और कर्म ईश्वर प्राप्ति के इन तीन साधनों में भी उन्होंने सामंजस्य स्थापित किया। रामचरितमानस की भाषा अवधी रख कर भाषा के क्षेत्र में भी एक मध्यम मार्ग का उन्होंने अनुसरण किया।

तुलसी की अमर लेखनी से साहित्य में सभी रसों की सरिता बही। यदि यह कहा जाय कि सूर ने शृंगार रस की रसराजता प्रमाणित कर दी है तो निस्सन्देह रूप से यह भी कहा जा सकता है कि तुलसी ने शृंगार रस की मर्यादा बाँध दी। उनके राम महामानव थे—मर्यादा पुरुषोत्तम थे। रामराज्य का आदर्श तुलसी की देन है। उन्होंने हमें आदर्श जीवन के लिए आदर्श भाई, पत्नी, माता, पिता, सेवक, परिजन, पुरजन और सभी दिये। सारांश यह कि हमारे जीवन का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जहाँ पर तुलसी का आलोक न पहुँचा हो। जहाँ हमें रामचरितमानस में तुलसी के सामाजिक विचार मिलते हैं वहाँ विनय पत्रिका में हमें उनके व्यक्तिगत विचार मिल जाते हैं। 'साधुमत' और 'लोकमत' दोनों का सामंजस्य करने से ही हमारे जीवन की गुत्थियाँ सुलझ सकती हैं। व्यक्तिगत उत्कर्ष के लिए 'सन्त स्वभाव' अत्यन्त आवश्यक है।

भाषा और शैली—

भाषा की दृष्टि से तुलसी का अवधी और ब्रज दोनों पर समान अधिकार था। वैसे रामानन्द ठेठ अवधी में है। रामचरित मानस

साहित्यिक अवधी में और कवितावली की भाषा प्रांजल ब्रज भाषा है। उनके समय में जितनी भी काव्य शैलियाँ प्रचलित थीं उन सभी में तुलसी ने अभूतपूर्व सफलता पाई। उनकी लेखनी सभी छंदों में निर्द्वन्द्व भाव से चलती रही। भाषा, भाव, अलंकार तथा छंद इन सभी दृष्टियों से तुलसी 'अद्वितीय' हैं। सच तो यह है कि तुलसी हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं और रामचरितमानस हिन्दी भाषा की सर्वश्रेष्ठ कृति है।

२—तुलसीदास

राम-वन-गमन

बरबस राम सुमंत्र पठाए।
सुरसरि-तीर आप तब आए॥
माँगी नाव न केवट आना।
कहै तुम्हार मरमु मैं जाना॥
चरन कमल रज कहँ सबु कहई।
मानुषकरनि मूरि कछु अहई॥
छुअत सिला भइ नारि सुहाई।
पाहन ते न काठ कठिनाई॥
तरनिउँ मुनिघरनी होइ जाई।
बाट परै मोरि नाव उड़ाई॥
एहि प्रतिपालौं सबु परिवारू।
नहिं जानौं कछु और कबारू॥
जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू।
मोहि पद पदुम पखारन कहहू।

छंद—पद-कमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं।
मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब साँची कहौं॥
बरु तीर मारहु लखनु पै जब लगि न पाय पखारिहौं।
तब लगि न तुलसीदास-नाथ कृपालु पारु उतारिहौं॥

सोरठा—सुनि केवट के बयन, प्रेम लपेटे अटपटे
बिहँसे करुना-अयन, चितै जानकी-लषन तन ॥
कृपासिंधु बोले मुसुकाई ।
सोइ करु जेहि तव नाव न जाई ॥
बेगि आनु जल पाय पखारू ।
होत बिलंब, उतारहि पारू ॥
जासु नाम सुमिरत एक बारा ।
उतरहिं नर भवसिंधु अपारा ॥
सोइ कृपालु केवटहि निहोरा ।
जेहि जगु किए तिहुँ पगहुँ ते थोरा ॥
पदनख निरखि देवसरि हरषी ।
सुनि प्रभुवचन मोह मति करषी ॥
केवट राम-रजायसु पावा ।
पानि कठवता भरि लेइ आवा ॥
अति आनंद उमगि अनुरागा ।
चरन-सरोज पखारन लागा ॥
बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं ।
एहि सम पुन्यपुंज कोउ नाहीं ॥
दोहा—पद पखारि जलु पान करि, आपु सहित परिवार ।
पितर पारु करि प्रभुहिं पुनि, मुदित गयेउ लेइ पार ॥
उतरि ठाढ़ भए सुरसरि-रेता ।
सीय रामु गुह लषन समेता ॥
केवट उतरि दंडवत कीन्हा ।
प्रभुहि सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा ॥
पिय-हिय की सिय जाननिहारी ।
मनिमुँदरी मन-मुदित उतारी ॥

कहेउ कृपाल लेहि उतराई।
केवट चरन गहे अकुलाई॥
नाथ आजु मैं काह न पावा।
मिटे दोष-दुख-दारिद दावा॥
बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी।
आजु दीन्हि बिधि बनि भलि भूरी॥
अब कछु नाथ न चाहिअ मोरें।
दीनदयाल अनुग्रह तोरें॥
फिरती बार मोहि जोइ देवा।
सो प्रसादु मैं सिर धरि लेवा॥

दोहा—बहुत कीन्ह प्रभु लषन सिय, नहिं कछु केवट लेइ।
बिदा कीन्ह करुनायतन, भगति बिमल बरु देइ॥

तब मज्जनु करि रघुकुल नाथा।
पूजि पारथिव नायेउ माथा।
सिय सुरसरिहि कहेउ कर जोरी
मातु मनोरथ पुरउबि मोरी॥
पति-देवर-संग कुसल बहोरी।
आइ करौं जेहि पूजा तोरी॥
सुनि सिय-बिनय प्रेम रस-सानी।
भइ तब बिमल बारि बरबानी॥
सुनु रघु-बीर प्रिया बैदेही।
तब प्रभाउ जग बिदित न केही॥
लोकप होहिं बिलोकत तोरें।
तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरें॥
तुम्ह जो हमहि बड़ि बिनय सुनाई।
कृपा कीन्हि, मोहि दीन्हि बड़ाई॥

तदपि, देवि मैं देबि असीसा।
सफल होन हित निज बागीसा॥

दोहा—प्राननाथ देवर सहित, कुसल कोसला आइ।
पूजिहि सब मनकामना, सुजसु रहिहि जग छाइ॥

गंगबचन सुनि मंगलमूला।
मुदित सीय सुरसरि अनुकूला॥
तब प्रभु गुहहिं कहेउ घर जाहू।
सुनत सूख मुखु भा उर दाहू॥
दीन बचन गुह कह कर जोरी।
बिनय सुनहु रघु कुल-मनि मोरी॥
नाथ साथ रहि पंथु देखाई।
करि दिन चारि चरन-सेवकाई॥
जेहि बन जाइ रहब रघुराई।
परनकुटी मैं करबि सुहाई॥
तब मोहि कहँ जसि देब रजाई।
सोइ करिहौं रघुबीर-दोहाई॥
सहज सनेह राम लखि तासू।
संग लीन्ह गुह हृदय हुलासू॥
पुनि गुह ग्याति बोलि सब लीन्हे।
करि परितोषु बिदा तब कीन्हे॥

दोहा—तब गनपति सिव सुमिरि प्रभु नाइ सुरसरिहि माथ।
सखा-अनुज-सिय-सहित बन, गवनु कीन्ह रघुनाथ॥

तेहि दिन भयेउ बिटप तर बासू।
लषन सखा सब कीन्ह सुपासू॥
प्रात प्रातकृत करि रघुराई।
तीरथराजु दीख प्रभु जाई॥

सचिव सत्य स्रद्धा प्रिय नारी।
माधव-सरिस मीतु हितकारी॥
चारि पदारथ भरा भँडारू।
पुन्य प्रदेस देस अति चारू॥
छेत्रु अगम गढ़ गाढ़ सुहावा।
सपनेहुँ नहिं प्रतिपच्छिन्ह पावा॥
सेन सकल तीरथ बर बीरा।
कलुष अनीक-दलन रनधीरा॥
संगमु सिंहासन सुठि सोहा।
छत्रु अपयबट मुनिमनु मोहा॥
चवँर जमुन अरु गंग तरंगा।
देखि होहिं दुख दारिद भंगा॥
दोहा—सेवहिं सुकृती साधु सुचि, पावहिं सब मन-काम।
बंदी बेद-पुरान-गन, कहहिं बिमल गुनग्राम॥
को कहि सकै प्रयाग-प्रभाऊ।
कलुष-पुंज कुंजर मृग-राऊ॥
अस तीरथपति देखि सुहावा।
सुखसागर रघुबर सुखु पावा॥
कहि सिय लषनहि सखहि सुनाई।
श्रीमुख तीरथ-राज-बड़ाई॥
करि प्रनामु देखत बन बागा।
कहत महातम अति अनुरागा॥
एहि बिधि आइ बिलोकी बेनी।
सुमिरत सकल-सुमंगल-देनी॥
मुदित नहाइ कीन्हि सिव-सेवा।
पूजि जथाबिधि तीरथ-देवा॥

तब प्रभु भरद्वाज पहिं आए।
करत दंडवत मुनि उर लाए॥
मुनि-मन-मोद न कछु कहि जाई।
ब्रह्मानंद-रासि जनु पाई॥

दोहा—दीन्हि असीस, मुनीस उर, अति अनंदु अस जानि।
लोचन-गोचर सुकृत-फल, मनहुँ किए विधि आनि॥

कुसल प्रस्न करि आसन दीन्हें।
पूजि प्रेम परिपूरन कीन्हें॥
कंद मूल फल अंकुर नीके।
दिए आनि मुनि मनहुँ अमी के॥
सीय-लपन-जन सहित सुहाए।
अति रुचि राम मूल फल खाए॥
भए बिगतस्रम राम सुखारे।
भरद्वाज मृदु बचन उचारे॥
आजु सुफल तपु तीरथ त्यागू।
आजु सुफलु जपु जोग बिरागू॥
सफल सकल-सुभ साधन-साजू।
राम तुम्हहिं अवलोकत आजू॥
लाभ-अवधि सुभ-अवधि न दूजी।
तुम्हरें दरस आस सब पूजी॥
अब करि कृपा देहु बर एहू।
निज-पद-सरसिज सहज सनेहू॥

दोहा—करम बचन मन छाँड़ि छल, जब लगि जनु न तुम्हार।
तब लगि सुखु सपनेहुँ नहीं, किए कोटि उपचार॥

सुनि मुनि बचन रामु सकुचाने।
भाव भगति आनंद अघाने॥

तब रघुबर मुनि सुजस सुहावा।
कोटि भाँति कहि सबहिं सुनावा॥
सो बड़ सो सब-गुन गन गेहू।
जेहि मुनीस तुम्ह आदर देहू॥
मुनि रघुबीर परसपर नवहीं।
बचन-अगोचर सुख अनुभवहीं॥
एह सुधि पाइ प्रयाग-निवासी।
बटु तापस मुनि सिद्ध उदासी॥
भरद्वाज-आस्रम सब आए।
देखन दसरथ-सुअन सुहाए॥
राम प्रनाम कीन्ह सब काहू।
मुदित भए लहि लोयन-लाहू॥
देहिं असीस परम सुखु पाई।
फिरे सराहत सुंदरताई॥

दोहा—राम कीन्ह बिस्राम निसि, प्रात प्रयाग नहाइ।
चले सहित सिय लषन जनु, मुदित मुनिहिं सिरु नाइ॥

राम सप्रेम कहेउ मुनि पाहीं।
नाथ कहिअ हम केहि मग जाहीं॥
मुनि मन बिहँसि राम सन कहहीं।
सुगम सकल मग तुम्ह कहँ अहहीं॥
साथ लागि मुनि सिष्य बोलाए।
सुनि मन मुदित पचासक आए॥
सबन्हि राम पर प्रेम अपारा।
सकल कहहिं मगु दीख हमारा॥
मुनि बटु चारि संग तब दीन्हें।
जिन्ह बहु जनम सुकृत सब कीन्हें॥

करि प्रनामु रिषि आयसु पाई।
प्रमुदित हृदय चले रघुराई॥
ग्राम निकट जब निकसहिं जाई।
देखहिं दरसु नारिनर धाई॥
होहिं सनाथ जनमफलु पाई।
फिरहिं दुखित मनु संग पठाई॥
दोहा—बिदा किए बटु बिनय करि, फिरे पाइ मनकाम।
उतरि नहाए जमुनजल, जो सरीरसम स्याम॥
सुनत तीरबासी नरनारी।
धाए निज निज काज बिसारी॥
लषन—राम—सिय—सुंदरताई।
देखि करहिं निज भाग्य बड़ाई॥
अति लालसा सबहिं मन माहीं।
नाउँ गाउँ बूझत सकुचाहीं॥
जे तिन्ह महुँ बयबिरिध सयाने।
तिन्ह करि जुगुति रामु पहिचाने॥
सकल कथा तिन्ह सबहिं सुनाई।
बनहि चले पितु-आयसु पाई॥
सुनि सविषाद सकल पछिताहीं।
रानी राय कीन्ह भल नाहीं॥
ते पितु मातु कहहु सखि कैसे।
जिन्ह पठए बन बालक ऐसे॥
राम-लषन-सिय-रूप निहारी।
होहिं सनेह बिकल नरनारी॥
दोहा—तब रघुबीर अनेक बिधि, सखहि सिखावन दीन्ह।
राम-रजायसु सीस धरि, भवन गवनु तेइ कीन्ह॥

पुनि सिय राम लषन कर जोरी।
जमुनहिं कीन्ह प्रनामु बहोरी॥
चले ससीय मुदित दोउ भाई।
रबितनुजा कै करत बड़ाई॥
पथिक अनेक मिलहिं मगु जाता।
कहहिं सप्रेम देखि दोउ भ्राता॥
राज-लषन सब अंग तुम्हारे।
देखि सोचु अति हृदय हमारे॥
मारग चलहु पयादहिं पाएँ।
ज्योतिषु झूठ हमारेहि भाएँ॥
अगमु पंथ गिरि कानन भारी।
तेहि महँ साथ नारि सुकुमारी॥
करि केहरि बन जाइ न जोई।
हम सँग चलहिं जो आयसु होई॥
जाब जहाँ लगि तहँ पहुँचाई।
फिरब बहोरि तुमहिं सिरु नाई॥

दोहा—एहि बिधि पूँछहिं प्रेम बस, पुलक गात जलु नैन।
कृपासिंधु फेरहिं तिन्हहिं, कहि बिनीत मृदु बैन॥

जे पुर गाँव बसहिं मग माहीं।
तिन्हहिं नाग-सुर-नगर सिहाहीं॥
केहि सुकृती केहि घरी बसाए।
धन्य धन्यमय परम सुहाए॥
जहँ-जहँ रामचरन चलि जाहीं।
तिन्ह समान अमरावति नाहीं॥
पुन्यपुंज मग-निकट-निवासी।
तिन्हहिं सराहहिं सुर-पुर-बासी॥

जे भरि नयन बिलोकहिं रामहिं ।
सीता लषन-सहित घनस्यामहिं ॥
जे सर सरित राम अवगाहहिं ।
तिन्हहिं देव-सर-सरित-सराहहिं ॥
जेहि तरुतर प्रभु बैठहिं जाई ।
करहिं कलपतरु तासु बड़ाई ॥
परसि राम-पद-पदुम-परागा ।
मानति भूमि भूरि निज भागा ॥
दोहा—छाँह करहिं घन, बिबुधगन, बरषहिं सुमन सिहाहिं ।
देखत गिरि बन बिहग मृग, रामु चले मग जाहिं ॥
सीता-लषन-सहित रघुराई ।
गाँव निकट जब निकसहिं जाई ॥
सुनि सब बाल वृद्ध नर नारी ।
चलहिं तुरत गृह-काज बिसारी ॥
राम-लषन-सिय-रूप निहारी ।
पाइ नयनफलु होहिं सुखारी ॥
सजल बिलोचन पुलक सरीरा ।
सब भए मगन देखि दोउ बीरा ॥
बरनि न जाइ दसा तिन्ह केरी ।
लहि रंकन्हि जनु सुर-मनि-ढेरी ॥
एकन्हि एक बोलि सिख देही ।
लोचन लाहु लेहु छन एही ॥
रामहि देखि एक अनुरागे ।
चितवत चले जाहिं संग लागे ॥
एक नयनमग छबि उर आनी ।
होहिं सिथिल तन मन बरबानी ॥

दोहा – एक देखि बट छाँह भलि, डासि मृदुल तृन पात ।
कहहिं गवाँइअ छिनुक स्रम, गवनव अवहि कि प्रात ॥

एक कलस भरि आनहिं पानी ।
अँचइअ नाथ कहहिं मृदुबानी ॥
सुनि प्रिय बचन प्रीति अति देखी ।
राम कृपालु सुसील बिसेखी ॥
जानी स्रमित सीय मन माही ।
घरिक बिलंबु कीन्ह बट छाहीं ॥
मुदित नारिनर देखहिं सोभा ।
रूप अनूप नयन मनु लोभा ॥
एकटक सब जोहहिं चहुँ ओरा ।
रामचन्द्र-मुख चंद-चकोरा ॥
तरुन तमाल बरन तनु सोहा ।
देखत कोटि-मदन-मनु मोहा ॥
दामिनि बरनि लषनु सुठि नीके ।
नखसिख सुभग, भावते जी के ॥
मुनिपट कटिन्ह कसे तूनीरा ।
सोहहिं कर कमलनि धनु तीरा ॥

दोहा—जटा मुकुट, सीसनि सुभग, उर भुज नयन बिसाल ।
सरद परब-बिधु-बदन बर, लसत स्वेद-कन-जाल ॥

बरनि न जाइ मनोहर जोरी ।
सोभा बहुत, थोरि मति मोरी ॥
राम—लषन—सिय—सुन्दरताई ।
सब चितवहिं चित मन मति लाई ॥
थके नारि नर प्रेम-पिआसे ।
मनहुँ मृगा मृग देखि दिआसे ॥

सीय समीप ग्राम तिय जाहीं ।
पूछत अति सनेह सकुचाहीं ॥
बार बार सब लागहिं पाएँ ।
कहहिं वचन मृदु सरल सुभाएँ ॥
राजकुमारि विनय हम करहीं ।
तिय सुभाय कछु पूछत डरहीं ॥
स्वामिनि अविनय छमबि हमारी ।
बिलगु न मानब जानि गवाँरी ॥
राजकुँअर दोउ सहज सलोने ।
इन्ह तें लहि दुति मरकत सोने ॥
दोहा—स्यामल गौर किसोर बर, सुन्दर सुखमा अयन ।
सरद-सर्बरी नाथ, मुख, सरद-सरोरुह-नयन ॥
कोटि—मनोज—लजावनिहारे ।
सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे ॥
सुनि सनेहमय मंजुल बानी ।
सकुची सिय, मन महुँ मुसुकानी ॥
तिनहिं विलोकि बिलोकति धरनी ।
दुहुँ सकोच सकुचति बरबरनी ॥
सकुचि सप्रेम बाल मृग-नयनी ।
बोली मधुरबचन पिकबयनी ॥
सहज सुभाय सुभग तन गोरे ।
नामु लषनु लघु देवर मोरे ॥
बहुरि बदनु-बिधु अँचल ढाकी ।
पियतन चितै भौंह करि बाँकी ॥
खंजन मंजु तिरीछे नैननि ।
निज पति कहेउ तिन्हहिं सिय सैननि ॥

भईं मुदित सब ग्राम-वधूटीं।
रंकन्ह रायरासि जनु-लूटीं॥
दोहा—अति सप्रेम सिय पाँय परि, बहु बिधि देहिं असीस।
सदा सोहागिनि होहु तुम्ह, जब लगि महि अहिसीस॥
पारबती-सम पतिप्रिय होहू।
देबि न हम पर छाँड़ब छोहू॥
पुनि पुनि बिनय करिअ कर जोरी।
जौं एहि मारग फिरिअ बहोरी॥
दरसनु देब जानि निज दासी।
लखी सीय सब प्रेम-पिआसी॥
मधुर बचन कहि कहि परतोषीं।
जनु कुमुदिनी कौमुदी पोषीं॥
तबहिं लषन रघुबर-रुख जानी।
पूछेउ मगु लोगन्हि मृदुबानी॥
सुनत नारिनर भए दुखारी।
पुलकित गात, बिलोचन बारी॥
मिटा मोद, मन भए मलीने।
बिधि निधि दीन्हि लेत जनु छीने॥
समुझि करम-गति धीरज कीन्हा।
सोधि सुगम मगु तिन्ह कहि दीन्हा॥
दोहा—लषन-जानकी-सहित तब, गवनु कीन्ह रघुनाथ।
फेरे सब प्रिय बचन कहि, लिए लाइ मन साथ॥
फिरत नारिनर अति पछिताहीं।
दैअहि दोषु देहिं मन माहीं॥
सहित बिषाद परसपर कहहीं।
बिधि करतब उलटे सब अहहीं॥

निपट निरंकुस निठुर निसंकू।
जेहि ससि कीन्ह सरुज सकलंकू॥
रूख कलपतरु, सागरु खारा।
तेहि पठए बन राजकुमारा॥
जौं पै इन्हहिं दीन्ह बनबासू।
कीन्ह बादि बिधि भोग बिलासू॥
ए बिचरहिं मग बिनु पदत्राना।
रचे बादि, बिधि बाहन नाना॥
ए महि परहिं डासि कुस पाता।
सुभग सेज कत सृजत बिधाता॥
तरु-बर-बास इन्हहि बिधि दीन्हा।
धवल धाम रचि रचि स्रमु कीन्हा॥

दोहा—जौं ए मुनि-पट धर जटिल, सुंदर सुठि सुकुमार।
बिबिध भाँति भूषन बसन, बादि किए करतार॥

जौं ए कंद मूल फल खाहीं।
बादि सुधादि असन जग माहीं॥
एक कहहिं ए सहज सुहाए।
आप प्रकट भए बिधि न बनाए॥
जहँ लगि बेद कही बिधिकरनी।
स्रवन नयन मन गोचर बरनी॥
देखहु खोजि भुवन दस चारी।
कहँ अस पुरुष, कहाँ असि नारी॥
इन्हहिं देखि बिधि मनु अनुरागा।
पटतर जोग बनावै लागा॥
कीन्ह बहुत स्रम एक न आए।
तेहि इरिषा बन आनि दुराए॥

एक कहहिं हम बहुत न जानहिं ।
आपुहिं परम धन्य करि मानहिं ॥
ते पुनि पुन्यपुंज हम लेखे ।
जे देखहिं देखिहहिं, जिन्ह देखे ॥
दोहा—एहि बिधि कहि कहि बचन प्रिय, लेहिं नयन भरि नीर ।
किमि चलिहहिं मारग अगम, सुठि सुकुमार सरीर ॥
नारि सनेह-बिकल सब होहीं ।
चकई साँझ समय जनु सोहीं ॥
मृदु-पद-कमल कठिन मगु जानी ।
गहबरि हृदय कहैं बर बानी ॥
परसत मृदुल चरन अरुनारे ।
सकुचति महि जिमि हृदय हमारे ॥
जौं जगदीस इन्हहिं बनु दीन्हा ।
कस न सुमनमय मारगु कीन्हा ॥
जौं माँगा पाइअ बिधि पाहीं ।
ए रखिअहि सखि आँखिन्ह माहीं ॥
जे नरनारि न अवसर आए ।
तिन्ह सिय रामु न देखन पाए ॥
सुनि सुरूप बूझहिं अकुलाई ।
अब लगि गये कहाँ लगि भाई ॥
समरथ धाइ बिलोकहिं जाई ।
प्रमुदित फिरहिं जनमफलु पाई ॥
दोहा—अबला बालक वृद्धजन, कर मींजहिं पछिताहिं ।
होहिं प्रेमवस लोग इमि, राम जहाँ जहँ जाहिं ॥
गाँव गाँव अस होइ अनन्दू ।
देखि भानु-कुल-कैरव-चन्दू ॥

जे कछु समाचार सुनि पावहिं।
ते नृपरानिहिं दोषु लगावहिं ॥
कहहिं एक अति भल नरनाहू।
दीन्ह हमहिं जेइ लोचन-लाहू॥
कहहिं परस्पर लोग लुगाई।
बातैं सरल सनेह सुहाई॥
ते पितु मातु धन्य जिन जाए।
धन्य सो नगरु जहाँ ते आये॥
धन्य सो देसु सैल बन गाऊँ।
जहँ जहँ जाहिं धन्य सोइ ठाऊँ॥
सुख पायेउ बिरंचि रचि तेही।
ए जेहि के सब भाँति सनेही॥
राम-लषन पथि-कथा सुहाई।
रही सकल मग-कानन छाई॥

दोहा–एहि बिधि रघु कुल-कमल-रवि, मग-लोगन्ह सुख देत।
जाहिं चले देखत बिपिन, सिय-सौमित्रि-समेत॥

आगे रामु लषन बने पाछें।
तापस बेष बिराजत काछें॥
उभय बीच सिय सोहति कैसे।
ब्रह्म जीव बिच माया जैसे॥
बहुरि कहौं छबि जसि मन बसई।
जनु मधु-मदन-मध्य रति लसई॥
उपमा बहुरि कहौं जिअ जोही।
जनु बुध-बिधु बिच रोहिनि सोही॥
प्रभु-पद-रेख बीच बिच सीता।
धरति चरन मग चलति सभीता॥

सीय राम—पद—अंक बराएँ ।
लषन चलहिं मगु दाहिन लाएँ ॥
राम-लषन-सिय-प्रीति सुहाई ।
बचन-अगोचर, किमि कहि जाई ॥
खग मृग मगन देखि छबि होहीं ।
लिये चोरि चित राम बटोही ॥

दोहा—जिन्ह जिन्ह देखे पथिक प्रिय, सिय-समेत-दोउ भाइ ।
भव-मगु-अगमु अनन्दु तेई, बिनु स्रम रहे सिराइ ॥

अजहुँ जासु उर सपनेहु काऊ ।
बसहिं लषन-सिय-राम-बटाऊ ॥
राम धाम-पथ पाइहि सोई ।
जो पथ पाव कबहुँ मुनि कोई ॥
तब रघुबीर स्रमित सिय जानी ।
देखि निकट बटु सीतल पानी ॥
तहँ बसि कंद मूल फल खाई
प्रात नहाइ चले रघुराई ॥
देखत बन सर सैल सुहाए ।
बालमीकि आस्रम प्रभु आये ॥
रामु दीख मुनि-बास सुहावन ।
सुन्दर गिरि काननु जलु पावन ॥
सरनि सरोज बिटप बन फूले ।
गुंजत मंजु मधुप रस-भूले ॥
खग मृग बिपुल कोलाहल करहीं ।
बिरहित-बैर मुदित मन चरहीं ॥

दोहा—सुचि सुन्दर आस्रमु निरखि, हरषे राजिव नैन ।
सुनि रघु-बर-आगमनु मुनि, आगे आयेउ लैन ॥

मुनि कहँ राम दंडवत कीन्हा।
आसिरवादु विप्रबर दीन्हा॥
देखि राम-छबि नयन जुड़ाने।
करि सनमानु आस्रमहिं आने॥
मुनिवर अतिथि प्रानप्रिय पाये।
कंद मूल फल मधुर मँगाये॥
सिय सौमित्रि राम फल खाये।
तब मुनि आस्रम दिए सुहाये॥
वालमीकि मन आनन्द भारी।
मंगल मूरति नयन निहारी॥
तब कर-कमल जोरि रघुराई।
बोले बचन स्रवन सुखदाई॥
तुम्ह त्रिकाल दरसी मुनिनाथा।
बिस्व बदर जिमि तुम्हरे हाथा॥
अस कहि प्रभु सब कथा बखानी।
जेहि जेहि भाँति दीन्ह बनु रानी॥

दोहा—तात-बचन पुनि मातु हित, भाइ भरत अस राऊ।
मो कहँ दरस तुम्हार प्रभु, सबु मम पुन्य प्रभाउ॥

देखि पायँ मुनिराय तुम्हारे।
भए सुकृत सब सुफल हमारे॥
अब जहँ राउर आयसु होई।
मुनि उदवेगु न पावै कोई॥
मुनि तापस जिन्ह ते दुखु लहहीं।
ते नरेस बिनु पावक दहहीं॥
मंगल-मूल विप्र-परितोषू।
दहै कोटि कुल भूसुर-रोषू॥

अस जिय जानि कहिअ सोइ ठाऊँ।
सिय-सौमित्रि-सहित जहँ जाऊँ॥
तहँ रचि रुचिर परन-तृन-साला।
बास करौं कछु काल कृपाला॥
सहज सरल सुनि रघुबर बानी।
साधु साधु बोले मुनि ग्यानी॥
कस न कहहु अस रघु-कुल केतू।
तुम्ह पालक संतत स्रुति-सेतू॥

छंद—स्रुति-सेतु-पालक राम तुम्ह जगदीस-माया जानकी।
जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की॥
जो सहससीसु अहीसु महि-धरु लषनु स-चराचर धनी॥
सुर-काज धरि नरराज तनु चले दलन खल-निसिचर अनी

सोरठा—राम सरूप तुम्हार, बचन-अगोचर बुद्धि-पर।
अबिगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह॥

जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे।
बिधि-हरि-संभु-नचावनि हारे॥
तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा।
अउरु तुम्हहिं को जाननिहारा॥
सोइ जानइ जेहि देहु जनाई।
जानत तुम्हहि, तुम्हहि होइ जाई॥
तुम्हरिहि कृपा तुम्हहि रघुनंदन।
जानहिं भगत, भगत-उर-चंदन॥
चिदानंदमय देह तुम्हारी।
बिगत-बिकार जान अधिकारी॥
नरतनु धरेहु संत-सुर-काजा।
कहहु करहु जस प्राकृत राजा॥

राम देखि सुनि चरित तुम्हारे ।
जड़ मोहहिं, बुध होहिं सुखारे ॥
तुम्ह जो कहहु, करहु,सब साँचा ।
जस काछिअ तस चाहिअ नाँचा ॥

दोहा—पूछेहु मोहिं कि रहौं कहँ, मैं पूछत सकुचाउँ ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि, तुम्हहिं देखावौं ठाउँ ॥

सुनि मुनि बचन प्रेमरस-साने ।
सकुचि राम मन महुँ मुसुकाने ॥
बालमीकि हँसि कहहिं बहोरी ।
बानी मधुर अमिअ रस बोरी ॥
सुनहु राम अब कहौं निकेता ।
जहाँ बसहु सिय लषन समेता ॥
जिन्ह के स्रवन समुद्र-समाना ।
कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना ॥
भरहिं निरंतर होहिं न पूरे ।
तिन्ह के हिय तुम्ह कहँ गृह रूरे ॥
लोचन चातक जिन्ह करि राखे ।
रहहिं दरस-जलधर अभिलाषे ॥
निदरहिं सरित सिंधु सर भारी ।
रूपबिंदु जल होहिं सुखारी ॥
तिन्ह के हृदय-सदन सुखदायक ।
बसहु बंधु सिय-सह रघुनायक ॥

दोहा—जस तुम्हार मानस बिमल, हंसिनि जीहा जासु ।
मुकुताहल गुनगन चुनै, राम बसहु हिय तासु ॥

प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा ।
सादर जासु लहै नित नासा ॥

तुम्हहिं निवेदित भोजन करहीं।
प्रभु-प्रसाद पट भूषन धरहीं॥
सीस नवहिं सुर-गुरु-द्विज देखी।
प्रीति-सहित करि बिनय बिसेखी॥
कर नित करहिं रामपद-पूजा।
राम भरोस हृदय नहिं दूजा॥
चरन रामतीरथ चलि जाहीं।
राम बसहु तिन्ह के मन माहीं॥
मंत्रराजु नित जपहिं तुम्हारा।
पूजहिं तुम्हहिं सहित परिवारा॥
तरपन होम करहिं बिधि नाना।
बिप्र जेवाँइ देहिं बहु दाना॥
तुम्हतें अधिक गुरहिं जिअ जानी।
सकल भाय सेवहिं सनमानी॥

दोहा—सबु करि माँगहिं एकु फलु, राम चरन-रति होउ।
तिन्ह के मन-मंदिर बसहु, सिय रघुनंदन दोउ॥

काम कोह मद मान न मोहा।
लोभ न छोभ न राग न द्रोहा॥
जिन्ह के कपट दंभ नहिं माया।
तिन्ह के हृदय बसहु रघुराया॥
सब के प्रिय, सब के हितकारी।
दुख-सुख-सरिस प्रसंसा गारी॥
कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी।
जागत सोवत सरन तुम्हारी॥
तुम्हहिं छाँड़ि गति दूसरि नाहीं।
राम बसहु तिन्ह के मन माहीं॥

जननी सम जानहिं पर नारी।
धनु पराव विष तें विष भारी॥
जे हरषहिं पर-संपति देखी।
दुखित होहिं पर-विपति बिसेखी॥
जिन्हहिं राम तुम्ह प्रान-पिआरे।
तिन्ह के मन सुभसदन तुम्हारे॥

दोहा—स्वामि सखा पितु मातु गुर, जिन्ह के सब तुम्ह तात।
मन-मंदिर तिन्ह के बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात॥

अवगुन तजि सबके गुन गहहीं।
विप्र-धेनु-हित संकट सहहीं॥
नीति-निपुन जिन्ह कइ जग लीका।
घर तुम्हार तिन्ह कर मनु नीका॥
गुन तुम्हार समुझै, निज दोषा।
जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा॥
राम-भगत प्रिय लागहिं जेही।
तेहि उर बसहु सहित बैदेही॥
जाति पाँति धनु धरमु बड़ाई।
प्रिय परिवार सदन सुखदाई॥
सब तजि तुम्हहिं रहै लउ लाई।
तेहि के हृदय रहहु रघुराई॥
सरगु नरकु अपबरगु समाना।
जहँ तहँ देख धरे धनुबाना॥
करम-बचन-मन राउर चेरा।
राम करहु तेहि के उर डेरा॥

दोहा—जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु, तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरंतर तासु मन, सो राउर निज गेहु॥

एहि बिधि मुनिवर भवन देखाए।
बचन सप्रेम राम मन भाए॥
कह मुनि सुनहु भानु-कुल-नायक।
आस्रमु कहौं समय-सुखदायक॥
चित्रकूट गिरि करहु निवासू।
तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू॥
सैलु सुहावन, कानन चारू।
करि केहरि-मृग-बिहँग बिहारू॥
नदी पुनीत पुरान बखानी।
अत्रि प्रिया निज तप-बल आनी॥
सुरसरि-धार नाउँ मंदाकिनि।
जो सब पातक पोतक-डाकिनि॥
अत्रि आदि मुनि-बर बहु बसहीं।
करहिं जोग जप-तप तन कसहीं॥
चलहु सफल स्रम सब कर करहू।
राम देहु गौरव गिरिबरहू॥
दोहा—चित्रकूट-महिमा अमित, कही महामुनि गाइ।
आइ नहाए सरित बर, सिय-समेत दोउ भाइ॥
रघुबर कहेहु लषन भल घाटू।
करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू॥
लषनु दीख पय उतर करारा।
चहुँ दिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा॥
नदी पनच-सर, सम दम दाना।
सकल कलुष कलि, साउज नाना॥
चित्रकूट जनु अचल अहेरी।
चुकै न घात मार मुठभेरी॥

अस कहि लषन ठाँव देखरावा ।
थल विलोकि रघुवर सुख पावा ॥
रमेउ राम मनु देवन्ह जाना ।
चले सहित सुरपति प्रधाना ॥
कोल-किरात वेष सब आए ।
रचे परन-तृन सदन सुहाए ॥
बरनि न जाहिं मंजु दुइ साला ।
एक ललित लघु एक विसाला ॥

दोहा—लषन-जानकी-सहित प्रभु, राजत रुचिर निकेत ।
सोह मदन मुनि वेषु जनु, रति-रितुराज-समेत ॥

अमर नाग किन्नर दिसिपाला ।
चित्रकूट आए तेहि काला ॥
राम प्रनामु कीन्ह सब काहू ।
मुदित देव लहि लोचन लाहू ॥
बरषि सुमन कह देव-समाजू ।
नाथ सनाथ भए हम आजू ॥
करि बिनती दुख दुसह सुनाए ।
हरषित निज निज सदन सिधाए ॥
चित्रकूट रघुनंदनु छाए ।
समाचार सुनि सुनि मुनि आए ॥
आवत देखि मुदित मुनिबृन्दा ।
कीन्ह दंडवत रघु-कुल चंदा ।
मुनि रघुबरहिं लाइ उर लेहीं ।
सुफल होन हित आसिष देहीं ॥
सिय-सौमित्रि-राम छवि देखहिं ।
साधन सकल सफल करि लेखहिं ॥

एहि विधि मुनिवर भवन देखाए।
बचन सप्रेम राम मन भाए॥
कह मुनि सुनहु भानु-कुल-नायक।
आस्रमु कहौं समय-सुखदायक॥
चित्रकूट गिरि करहु निवासू।
तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू॥
सैलु सुहावन, कानन चारू।
करि केहरि-मृग-बिहँग बिहारू॥
नदी पुनीत पुरान बखानी।
अत्रि प्रिया निज तप-बल आनी॥
सुरसरि-धार नाउँ मंदाकिनि।
जो सब पातक पोतक-डाकिनि॥
अत्रि आदि मुनि-बर बहु बसहीं।
करहिं जोग जप-तप तन कसहीं॥
चलहु सफल स्रम सब कर करहू।
राम देहु गौरव गिरिवरहू॥

दोहा—चित्र कूट महिमा अमित, कही महामुनि गाइ।
आइ नहाए सरित बर, सिय-समेत दोउ भाइ॥

रघुबर कहेहु लषन भल घाटू।
करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू॥
लषनु दीख पय उतर करारा।
चहुँ दिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा॥
नदी पनच-सर, सम दम दाना।
सकल कलुष कलि साउज नाना॥
चित्रकूट जनु अचल अहेरी।
चुकै न घात मार मुठभेरी॥

कीन्ह बासु भल ठाउँ बिचारी।
इहाँ सकल रितु रहब सुखारी॥
हम सब भाँति करब सेवकाई।
करि केहरि अहि बाघ बराई॥
बन बेहड़ गिरि कंदर खोहा।
सब हमार प्रभु पग पग जोहा॥
जहँ तहँ तुमहिं अहेर खेलाउब।
सर निरझर भल ठाउँ देखाउब॥
हम सेवक परिवार समेता।
नाथ न सकुचब आयसु देता॥

दोहा—बेदबचन, मुनिमन-अगम, ते प्रभु करुना-अयन।
बचन किरातन्ह के सुनत, जिमि पितु बालक-बयन॥

रामहिं केवल प्रेमु पियारा।
जानि लेउ जो जाननिहारा॥
राम सकल बन-चर तब तोषे।
कहि मृदु बचन प्रेम परिपोषे॥
बिदा किए सिरु नाइ सिधाए।
प्रभु-गुन कहत सुनत घर आए॥
एहि बिधि सिय समेत दोउ भाई।
बसहिं बिपिन सुर-मुनि-सुखदाई॥
जब तें आइ रहे रघुनायक।
तब तें भयेउ बनु मंगल-दायक॥
फूलहिं फलहिं बिटप बिधि नाना।
मंजु-बलित-बर-बेलि-बिताना॥
सुर-तरु सरिस सुभायँ सुहाए।
मनहुँ बिबुध बन परिहरि आए॥

दोहा—जथा जोग सनमानि प्रभु, बिदा किए मुनिबृन्द ।
करहिं जोग जप जाग तप, निज आस्रमनि सुछंद ॥

यह सुधि कोल किरातन्ह पाई ।
हरषे जनु नवनिधि घर आई ॥
कंद मूल फल भरि भरि दोना ।
चले रंक जनु लूटन सोना ॥
तिन्ह महँ जिन्ह देखे दोउ भ्राता ।
अपर तिन्हहिं पूछहिं मगु जाता ॥
कहत सुनत रघुबीर निकाई ।
आइ सबन्हि देखे रघुराई ॥
करहिं जोहारु भेंट धरि आगे ।
प्रभुहि बिलोकहिं अति अनुरागे ॥
चित्र लिखे जनु जहँ तहँ ठाढ़े ।
पुलक सरीर, नयन जल बाढ़े ॥
राम सनेह मगन सब जाने ।
कहि प्रिय बचन सकल सनमाने ॥
प्रभुहि जोहारि बहोरि बहोरी ।
बचन बिनीत कहहिं कर जोरी ॥

दोहा—अब हम नाथ सनाथ सब, भए देखि प्रभु पाय ।
भाग हमारे आगमनु, राउर कोसलराय ॥

धन्य भूमि बन पंथ पहारा ।
जहँ जहँ नाथ पाउ तुम धारा ॥
धन्य बिहँग मृग काननचारी ।
सफल जनम भए तुम्हहिं निहारी ॥
हम सब धन्य सहित परिवारा ।
दीख दरसु भरि नयन तुम्हारा ॥

कीन्ह बासु भल ठाउँ बिचारी।
इहाँ सकल रितु रहब सुखारी॥
हम सब भाँति करब सेवकाई।
करि केहरि अहि बाघ बराई॥
बन बेहड़ गिरि कंदर खोहा।
सब हमार प्रभु पग पग जोहा॥
जहँ तहँ तुम्हहिं अहेर खेलाउब।
सर निरझर भल ठाउँ देखाउब॥
हम सेवक परिवार समेता।
नाथ न सकुचब आयसु देता॥

दोहा—बेदबचन, मुनिमन-अगम, ते प्रभु करुना-अयन।
बचन किरातन्ह के सुनत, जिमि पितु बालक-बयन॥

रामहिं केवल प्रेमु पियारा।
जानि लेउ जो जाननिहारा॥
राम सकल बन-चर तब तोषे।
कहि मृदु बचन प्रेम परिपोषे॥
बिदा किए सिरु नाइ सिधाए।
प्रभु-गुन कहत सुनत घर आए॥
एहि बिधि सिय समेत दोउ भाई।
बसहिं बिपिन सुर-मुनि-सुखदाई॥
जब तें आइ रहे रघुनायक।
तब तें भयेउ बनु मंगल-दायक॥
फूलहिं फलहिं बिटप बिधि नाना।
मंजु-बलित--बर--बेलि--बिताना॥
सुर-तरु सरिस सुभायँ सुहाए।
मनहुँ बिबुध बन परिहरि आए॥

गुंज मंजुतर मधुकर स्रेनी।
त्रिबिध बयारि बहै सुखदेनी॥

दोहा—नीलकंठ कलकंठ सुक, चातक चक्क चकोर।
भाँति भाँति बोलहिं बिहँग, स्रवन-सुखद चित-चोर॥

करि केहरि कपि कोल कुरंगा।
बिगत-वैर बिचरहिं सब संगा॥
फिरत अहेर राम-छबि देखी।
होहिं मुदित मृग-बृन्द बिसेखी॥
बिबुध-बिपिन जहँ लगि जग माहीं।
देखि राम-बनु सकल सिहाहीं॥
सुरसरि सरसइ दिनकर कन्या।
मेकलसुता गोदावरि धन्या॥
सब सर सिंधु नदी नद नाना।
मंदाकिनि कर करहिं बखाना॥
उदय अस्त गिरि अरु कैलासू।
मंदर मेरु सकल-सुर-बासू॥
सैल हिमाचल आदिक जेते।
चित्रकूट जसु गावहिं तेते॥
बिंध मुदित मन सुख न समाई।
स्रम बिनु बिपुल बड़ाई पाई॥

दोहा—चित्रकूट के बिहँग मृग, बेलि बिटप तृन जाति।
पुन्यपुंज सब धन्य अस, कहहिं देव दिन राति॥

नयनवंत रघुबरहिं बिलोकी।
पाइ जन्म-फल होहिं बिसोकी॥
परसि चरन-रज अचर सुखारी।
भए परम पद के अधिकारी॥

सो बनु सैल सुभाय सुहावन।
मंगलमय अति-पावन-पावन॥
महिमा कहिअ कवनि बिधि तासू।
सुख सागर जहँ कीन्ह निवासू॥
पय पयोधि तजि अवध बिहाई।
जहँ सिय-लषनु राम रहे आई॥
कहि न सकहिं सुषमा जसि कानन।
जौं सत सहस होहिं सहसानन॥
सो मैं बरनि कहौं बिधि केही।
डाबर-कमठ कि मंदर लेही॥
सेवहिं लषन करम-मन बानी।
जाइ न सील, सनेहु, बखानी॥
दोहा—छिनु छिनु लखि सिय-राम-पद, जानि आपु पर नेहु।
करत न सपनेहुँ लषनु चितु, बन्धु मातु-पितु-गेहु॥
राम-सग सिय रहति सुखारी।
पुर-परिजन-गृह-सुरति बिसारी॥
छिनु छिनु पिय-विधु-बदनुनिहारी।
प्रमुदित मनहुँ चकोर-कुमारी॥
नाह-नेहु नित बढ़त बिलोकी।
हरषित रहति दिवस जिमि कोकी॥
सिय-मनु राम-चरन अनुरागा।
अवध-सहस-सम-बन प्रिय लागा॥
परनकुटी प्रिय प्रियतम संगा।
प्रिय परिवारु कुरंग बिहंगा॥
सासु-ससुर-सम मुनितिय, मुनिवर।
असन अमिय-सम कंद मूल फर॥

नाथ साथ साँथरी सुहाई।
मयन-सयन सय-सम सुखदाई॥
लोकप होहिं बिलोकत जासू।
तेहि कि मोहि सक बिषय-बिलासू॥

दोहा—सुमिरत रामहिं तजहिं जन, तृन-सम विषय-बिलासु।
राम-प्रिया जग-जननि सिय, कछु न आचरजु तासु॥

सीय लपन जेहि बिधि सुखु लहहीं।
सोइ रघुनाथ करहिं सोइ कहहीं॥
कहहिं पुरातन कथा कहानी।
सुनहिं लपनु सिय अति सुखु मानी॥
जब जब रामु अवध सुधि करहीं।
तब तब बारि बिलोचन भरहीं॥
सुमिरि मातु पितु परिजन भाई।
भरत सनेहु सील सेवकाई॥
कृपा-सिंधु प्रभु होहिं दुखारी।
धीरजु धरहिं कुसमउ बिचारी॥
लखि सिय लपनु बिकल होइ जाहीं।
जिमि पुरुषहि अनुसर परिछाहीं॥
प्रिया-बंधु-गति लखि रघुनंदनु।
धीर कृपाल भगत-उर-चंदनु॥
लगे कहन कछु कथा पुनीता।
सुनि सुखु लहहिं लपनु अरु सीता॥

दोहा—रामु लपन-सीता-सहित, सोहत परन-निकेत।
जिमि बासव बस अमरपुर, सची-जयंत-समेत॥



मीरां

३—मीरां

(जन्म सं० १५७३ मृत्यु सं० १६०३)

परिचय—

राजस्थान मरुमन्दाकिनी मीरां जोधपुर मेड़ता के राठौर रतनसिंह की पुत्री तथा सुप्रसिद्ध योधा जी की प्रपौत्री थीं। चौकड़ी नामक ग्राम में उत्पन्न हुईं। इनका विवाह उदयपुर के राणा भोजराज के साथ हुआ था। प्रारंभ से ही ये वैवाहिक जीवन और सांसारिकता के प्रति उदासीन रहा करती थीं। बाल्यकाल में ही इनके हृदय में श्रीकृष्णचन्द्रजी के प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ और कालान्तर में किशोरावस्था प्राप्त करते करते वर प्रणय के रूप में परिवर्तित हो गया। कृष्ण को ही ये अपना पति मानती थीं। साधु-संतों के बीच जाकर कीर्तन करना और भगवान् के सम्मुख नर्तन करना इनके जीवन का दैनिक अंग हो गया था। इनके पतिदेव को ये सब बातें अच्छी नहीं लगती थीं। इन्हें विष दिया गया। कहते हैं, कृष्ण के प्रसाद से वह अमृत हो गया। इनके पास सर्प की पिटारी भेजी गई, वह सर्प, भगवान् की कृपा से हार बन गया। अन्त में वे मथुरा, वृन्दावन में रहने लगीं। जीवन का अन्त द्वारिकापुरी में हुआ।

काव्यगत विशेषतायें—

मीरां साक्षात् भक्ति की मूर्ति थीं। इन्होंने माधुर्य भाव से भगवान् की पूजा की। श्रीकृष्ण जी को तो इन्होंने अपना पति ही मान लिया

था। इनकी कविताओं में जितनी तल्लीनता मिलती है वैसी अन्यत्र अप्राप्य है। सारा जीवन अपने आराध्य देव के गुणगान में व्यतीत कर दिया। इनके प्रेम का वियोग पक्ष अत्यन्त मनोहारी है। संयोग पक्ष भी कम सुखद नहीं है। भावों की गहनता एवं अनन्य भावुकता इनके काव्य में सर्वत्र पायी जाती है।

भाषा तथा शैली—

इनकी भाषा राजस्थानी मिश्रित ब्रज है। इनके मनोभाव निसर्ग-सिद्ध भावुकता से ओतप्रोत होकर पदों में अनायास ही फूट पड़े हैं। मीरां के पद गेय हैं।

३—मीरां

पद

(१)

बसो मोरे नैनन में नँदलाल।
मोहनी मूरति, साँवरी सूरति, नैना बने बिसाल ॥
मोर-मुकुट, मकराकृति कुंडल, अरुण तिलक दिये भाल।
अधर सुधा-रस मुरली राजति, उर वैजंती माल।
छुद्र घंटिका कटितट सोभित, नूपुर-सबद रसाल।
'मीरां' प्रभु संतन सुखदाई, भगत-बछल गोपाल ॥

(२)

भज मन चरण-कँवल अविनासी।
जेताइ दीसे धरण-गगन बिच, तेताइ सब उठ जासी।
इस देही का गरब न करणा, माटी में मिल जासी।
यो संसार चहर की बाजी, साँझ पड़्याँ उठ जासी।
कहा भयो तीरथ व्रत कीने, कहा लिये करवत कासी?
कहा भयो है भगवा पहर्याँ, घर तज भये संन्यासी?
जोगी होइ जुगत नहिं जाणी, उलट जनम फिर आसी ॥
अरज करौं अबला कर जोरे, स्याम तुम्हारी दासी।
'मीरां' के प्रभु गिरधर नागर, काटो जम की फाँसी ॥

(३)

या मोहन के मैं रूप लुभानी।
सुन्दर वदन कमल-दल लोचन, बाँकी चितवन मंद मुसकानी ॥

जमना के नीरे तीरे धेन चरावै, बंसी में गावै मीठी बानी।
तन मन धन गिरधर पर वारूँ, चरण-कँवल 'मीरां' लपटानी॥

(४)

माई री मैं तो लीयो गोविंदो मोल॥
कोई कहै छानै कोई कहै चौड़े, लियो वजंता ढोल॥
कोई कहै मुँहघो कोई सुँहघो, लियो री तराजू तोल।
कोई कहै कारो कोई कहै गोरो, लियो री अमोलक मोल॥
या ही कूँ सब लोग जाणत है, लियो री आँखी खोल।
'मीरां' कूँ प्रभु दरसण दीज्यौ, पूरब जनम कौ कोल॥

(५)

देखत राम हँसे सदामाँ कूँ, देखत राम हँसे।
फाटी तो फूलड़ियाँ पाँव उभाणा, चलतैं चरण घसे।
बालपणे का मिंत सदामाँ, अब क्यूँ दूर वसे।
कहा भावज ने भेंट पठाई, तांदुल तीन पसे।
कित गई प्रभु मोरी टूटी टपरिया, हीरा मोती लाल कसे।
कित गई प्रभु मोरी गउअन बछिया, द्वारा बिच हँसती फसे।
'मीरां' के प्रभु हरि अविनासी, सरणे तोरे वसे॥

(६)

नहिं ऐसो जनम बारबार।
का जाणूँ कछु पुण्य प्रगटे, मानुसा अवतार॥
बढ़त छिन-छिन घटत पल-पल, जात न लागे बार।
बिरछ के ज्यों पात टूटे, बहुरि न लागे डार॥
भौ-सागर अति जोर कहिये, अनँत ऊँडी धार।
राम नाम का बाँध बेड़ा, उतर परले पार॥

(७)

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकट मेरो पति सोई॥
छाँड़ि दई कुल की कानि, कहा करि है कोई।
संतन ढिग बैठि बैठि, लोक-लाज खोई॥
अँसुअन जल सींचि सींचि, प्रेम-वेलि बोई।
अब तो बेल फैल गई, आणँद-फल होई॥
भगत देखि राजी हुई, जगत देखि रोई।
दासी 'मीरां' लाल गिरधर, तारो अब मोई॥

(८)

करम-गत टारे नाहिं टरे।
सतवादी हरिचंद-से राजा, सो तो नीच घर नीर भरे।
पाँच पांडु अरु कुन्ती द्रोपदी, हाड हिमालै गरे।
जग्य कियो बलि लेण इन्द्रासण, सो पाताल धरे।
'मीरां' के प्रभु गिरधर नागर, विष से अमृत करे॥

(९)

मैंने राम रतन धन पायो।
बसत अमोलक दी मेरे सत्गुर, करि किरपा अपणायौ।
जनम जनम की पूँजी पाई, जग में सबै खोवायौ।
खरचै नहिं कोई चोर न लेवै, दिन-दिन बधत सवायौ।
सत की नाव खेवटिया सतगुर, भवसागर तरि आयौ।
'मीरां' के प्रभु गिरधर नागर, हरखि-हरखि जस गायौ॥

(१०)

राणा जी, मैं तो गिरधर के घर जाऊँ।
गिरधर हमारा साँचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊँ॥

रैन पड़े पर ही उठ धाऊँ भोर भये घर आऊँ।
रैन-दिवस वाके संग खेलूँ जो रीझे तो रिझाऊँ॥
जो वहि पहिरे सो ही पहिरूँ, जो दे सो ही खाऊँ।
मेरी उनकी प्रीति पुरानी; उन बिन पल न रहाऊँ॥
जहँ बैठावे तितही बैठूँ, बेचे तो बिक जाऊँ।
'मीरां' के प्रभु गिरधर नागर बार बार बलि जाऊँ॥

(११)

रामनाम रस पीजे मनुआँ रामनाम रस पीजै।
तज कुसंग सतसंग बैठ नित हरि-चरचा गुन लीजै॥
काम क्रोध मद लोभ मोह कूँ चित से बहाय दीजै।
'मीरां' के प्रभु गिरधर नागर ताहि के रँग में भीजै॥

४—नरोत्तम दास

सुदामाचरित

परिचय—

नरोत्तम दास जी बाड़ी—सीतापुर के रहने वाले थे। ये जाति के कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनके जन्म और मरण की तिथियों का पता नहीं लगता। "शिवसिंह सरोज" के अनुसार संवत् १६०२ वि० में इनका विद्यमान रहना सिद्ध है।

रचनायें—

सुदामा-चरित, ध्रुवचरित और विचारमाला। ध्रुवचरित और विचारमाला अप्राप्य हैं।

काव्यगत विशेषतायें—

सुकवि नरोत्तम दास की ख्याति का मुख्य आधार है "सुदामाचरित" नामक खण्ड-काव्य जो कथा, चरित्र-चित्रण और काव्यगत भावुकता सभी दृष्टियों से एक सफल रचना है। दीन दशा का ऐसा मार्मिक चित्रण स्यात् ही किसी कवि ने किया हो। सुदामा और उनकी स्त्री की बातचीत अत्यन्त संयत और स्वाभाविक ढंग की है। मित्रता का इतना आदर्श चित्रण किसी भी कवि ने नहीं किया। एक ओर सुदामा का स्वाभिमान उन्हें कृष्ण के सामने हाथ फैलाने से रोकता है तो दूसरी ओर श्रीकृष्ण भी सुदामा को कुछ विदाई देकर अपमानित नहीं करते, उनके कष्ट को

समझकर उनकी भावना का आदर कर चुपचाप उनका दारिद्रय दूर कर देते हैं। तीनों लोकों के स्वामी कृष्ण अपने मित्र को पाकर अपना बड़प्पन भूल जाते हैं। उनका उपकार इस प्रकार करते हैं पर उन पर अहसान का बोझ नहीं पड़ने देते।

भाषा और शैली—

सुदामा-चरित की भाषा शुद्ध ब्रज है। कहीं कहीं बैसवाड़े की बोली का भी पुट है। आवश्यकतावश कहीं कहीं शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा भी गया है। किन्तु इसके कारण भाषा-सौष्ठव का ह्रास नहीं हुआ है। इनकी भाषा अत्यन्त सरल, श्रुति-मधुर एवं प्रसाद गुणपूर्ण है। इस खण्ड काव्य में इन्होंने कवित्त, सवैया, दोहा, कुण्डलियाँ आदि अनेक छन्दों का सफल रीति से व्यवहार किया है। इनमें अलंकारिता की रुचि नहीं पाई जाती, यद्यपि अनेक अलंकार स्वतः एवं स्वाभाविक रूप में आ गये हैं।

४—सुदामा-चरित

द्वारका जाहु जू द्वारका जाहु जू,
आठहु याम यही झक तेरे।
जौ न कहो करिये तौ बड़ो दुख,
पैहौं कहाँ अपनी गति हेरे।
द्वार खड़े प्रभु के छड़िया तहँ,
भूपति जान न पावत नेरे।
पाँच सुपारी तौ देखु विचारि के,
भेट को चारि न चामर मेरे॥

यह सुनि के तब ब्राह्मणी, गई परोसिन पास।
सेर पाव चामर लिये, आई सहित हुलास।
सिद्धि करौ गणपति सुमिरि, बाँधि दुपटिया खूट।
चले जाहु तेहि मारगहि, माँगत बाली बूट॥

दृष्टि चकचौंधि गई देखत सुवरनमयी,
एकते सरस एक द्वारका के भौन हैं।
पूछे बिन कोऊ काहू से न करै बात,
जहाँ देवता से बैठे सब साधि मौन हैं।
देखत सुदामा धाय पुरजन गहे पाय,
कृपा करि कहो, कहाँ कीने विप्र गौन हैं।
धीरज अधीर के, हरण पर-पीर के,
बताओ बलवीर के महल यहाँ कौन हैं॥

द्वारपाल चलि तहँ गयो, जहाँ कृष्ण यदुराय।
हाथ जोरि ठाढ़ो भयो, बोल्यो शीश नवाय॥
शीश पगा न झँगा तन में प्रभु,
जाने को आहि बसै किहि ग्रामा।
धोती फटी सी लटी दुपटी अरु,
पाँय उपानह की नहिं सामा।
द्वार खड़ो द्विज दुर्बल देखि,
रह्यो चकि सो वसुधा अभिरामा।
दीनदयालु को पूछत धाम,
बतावत आपनो नाम सुदामा।
लोचन पूर रहे जल सों प्रभु,
दूर ते देखत ही दुख मेट्यो।
सोच भयो सुरनायक के,
कलपद्रुम के हिय माँझ खखेट्यो।
काँपि कुबेर हिये सरसे,
परसे पग जात सुमेरु समेट्यो।
रंक ते राउ भयो तबही,
जबही भरि अंक रमापति भेंट्यो।
ऐसे बिहाल बिवायन सों भये,
कंटक जाल लगे पुनि जोये।
हाय महा दुख पायो सखा,
तुम आये इतै न किते दिन खोये।
देखि सुदामा की दीन दशा,
करुणा करिके करुणानिधि रोये।
पानी परात को हाथ छुयो नहिं,
नैनन के जल सों पग धोये॥

तंदुल तिय दीने हुते, आगे धरियो जाय।
देख राजसंपति विभव, दै नहिं सकत लजाय॥
अंतरयामी आप हरि, जान भक्ति की रीति।
सुहृद सुदामा विप्र सों, प्रकट जनाई प्रीति॥
कछु भाभी हमको दियो, सो तुम काहे न देत।
चाँपि गाँठरी काँख में, रहे कहो किहि हेत॥

आगे चना गुरु मात दिये,
ते लिये तुम चाबि हमैं नहिं दीने।
श्याम कही मुसकाय सुदामा सों,
चोरि की बानि में हो जु प्रवीने।
गाँठरी काँख में चाँपि रहे तुम,
खोलत नाहिं सुधारस भीने।
पाछिली बानि अजौ न तजी तुम,
वैसे ही भाभी के तंदुल कीने॥

खोलत सकुचत गाँठरी, चितवत हरि की ओर।
जीरण पट फट छुटि परे, बिखरि गये तेहि ठोर॥

तंदुल माँगत मोहन विप्र,
सकोच ते देत नहीं अभिलाखे।
है नहिं पास कछू कहिके,
तहि गोपि घनी विधि काँख में राखे।
सो लखि दीनदयालु तहाँ,
यह चोरी करी तुम यों हँसि भाखे।
खोलके पोट अछोट मुठी,
गिरिधारण चामर चाव सों चाखे।

काँपि उठी कमला मन सोचत,
मों सों कहा हरि को मन ओंको।
ऋद्धि कँपी नवनिद्धि कँपी,
सब सिद्धि कँपी ब्रह्मनायक धोंको।
शोक भयो सुरनायक के,
जब दूसरी बार लयो भरि झोंको।
मेरु डरै बकसै जनि मोहि,
कुबेर चबावत चामर चोंको॥

हूल हियरा में कान कानन परी है टेर,
भेटत सुदामैं श्याम बनै न अघातहीं।
कहै नरोत्तम ऋद्धि-सिद्धिन में शोर भयो,
ठाढ़ी थरहरे और सोचे कमला तहीं।
नाग लोक लोक सब ओक ओक थोक थोक,
ठाढ़े थरहरैं मुख से कहैं न बातहीं।
हालो परयो लोकन में लालो परयो चक्रिन में,
चालो परयो लोगन में चामर चबातहीं॥

भौन भरे पकवान मिठाइन,
लोग कहैं निधि हैं सुखमा के।
साँझ सबेरे पिता अभिलाषत,
दाख न चाखत सिंधु छमा के।
ब्राह्मण एक कोऊ दुखिया,
सेर पावक चामर लायो समा के।
प्रीति की रीति कहा कहिये,
तिहि बैठे चबावत कंत रमा के॥

मूठी तीसरी भरत ही, रुक्मिनि पकरी बाँह।
ऐसी तुम्हें कहा भई, संपति को अनचाह॥
कही रुक्मिनी कान में, यह धौं कौन मिलाप।
करत सुदामहि आपसों, होत सुदामा आप॥

हाथ गह्यो प्रभु को कमला कहै,
नाथ कहा तुमने चित धारी।
तंदुल खाय मुठी दुइ दीन,
कियो तुमने दुइ लोक विहारी।
खाय मुठी तिसरी अब नाथ,
कहा निज वास की आस बिसारी।
रंकहि आप समान कियो तुम,
चाहत आपहि होन भिखारी॥

रूपे के रुचिर थार पायस सहित सिता,
सब जीत लीनी शोभा शरद के चंद की।
दूसरे परोस्यो भात सान्यो है सुरभि घृत,
फूले फूले फुलके प्रफुल्ल दुति मंद की।
पापर मुँगौरी बरा बेसन अनेक भाँति,
देवता बिलोकि शोभा भोजन अनंद की।
या विधि सुदामाजी को अच्छकै जिमाय फिर,
पाछे कै पछावरि परोसी आनि कंद की॥

कह्यौ विश्वकर्मा को हरि तुम जाय करि,
नगर सुदामाजी को रचौ वेग अबही।
रतनजटित धाम सुबरणमयी सब,
कोट औ बजार बाग फूलन के तबही।

कल्पवृक्ष द्वार गज रथ असवार प्यादे,
कीजिये अपार दास दासी देव छत्रही।
इंद्र औ कुबेर आदि देव वधू अपसारा,
गंधरब गुणी जहाँ ठाढ़े रहैं सबही॥

नित नित सब द्वारावती, दिखलाई प्रभु आप।
भरे बाग अनुराग सब, जहाँ न व्यापहि ताप॥
परम कृपा दिन दिन करी, कृपानाथ यदुराय।
मित्र भावना विस्तरी, दूनों आदर भाय॥

दाहिने वेद पढ़ैं चतुरानन,
सामुहे ध्यान महेश धरयो है।
बायें दोऊ करजोर सुसेवक,
देवन साथ सुरेश खरयो है।
एतन बीच अनेक लिये धन,
पायन आय कुवेर परयो है।
देखि विभो अपनो सपनो,
बपुरो वह ब्राह्मण चौंकि परयो है॥

देनो हुतो सो दे चुके, विप्र न जानी गाथ।
चलती बेर गुपालजी, कछू न दीनो हाथ॥
गोपुर लों पहुँचाय के, फिरे सकल दरबार।
मित्र वियोगी कृष्ण के, नेत्र चली जल-धार॥
हौं आवत नाहीं हुतौ, बामहि पठयो ठेल।
अब कहिहौं समुझाय के, बहु धन धरौ सकेल॥
बालापन के मित्र हैं, कहा देउँ मैं शाप।
जैसो हरि हमको दियो, तैसो पइयो आप॥

और कहा कहिये जहाँ, कंचन ही के धाम।
निपट कठिन हरि को हियो, मोको दियो न दाम॥
इमि सोचत सोचत झकत, आये निज पुर तीर।
दृष्टि परो इक बारहीं हय गयंद की भीर॥

जगर मगर ज्योति छाय रही चहुँदिशि,
अगर बगर हाथी घोड़न को शोर है।
चौपड़ को बन्यो है बजार पुनि सोनन के,
महल दुकान की कतार चहुँ ओर है।
भीड़भाड़ धकापेल चहुँ दिशि देखियत,
द्वारका ते दूनों यहाँ प्यादेन को जोर है।
रहिबो को ठाम है न काहू सों पिछान मेरी,
बिन जाने बसे कोऊ हाड़ मेरे तोर है॥

फूटी एक थारी बिन टोंटनी की झारी हुती,
बाँस की पिटारी औ पथारी हुती टाट की।
बेंटे बिन छुरी औ कमंडलु द्वै टूक वहै,
टूटो हतो पोथी पाटी टूटी एक खाट की।
पथरौटा काठको कठौता कहूँ दीसै नाहिं,
पीतर को लोटो हो कटोरो है न बाट की।
कामरी फटी सी हुती डोड़ेन की माला नाक,
गोमती की माटी की न सुध कहूँ माट की॥



अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

५—हरिऔध

(जन्म सं० १९२२, मृत्यु सं० २००५)

परिचय—

अयोध्यासिंह जी उपाध्याय "हरिऔध" का जन्म आजमगढ़ जिले के निजामाबाद नामक स्थान में हुआ था। संवत् १९३६ में वर्नाक्यूलर परीक्षा पास करके इन्होंने अपनी पढ़ाई क्वीन्स कालेज बनारस में प्रारम्भ की, किन्तु अस्वस्थता के कारण वह अधिक दिन तक न चल सके। पश्चात् इन्होंने संस्कृत पढ़ना प्रारम्भ कर दिया। संवत् १९४१ में निज़ामाबाद के मिडिल स्कूल में ही अध्यापक नियुक्त हुए। संवत् १९४६ में ये गिरदावर कानूनगो बनाये गए। सं० १९६६ में इन्होंने अवकाश ग्रहण किया और अवैतनिक रूप से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी का अध्यापन जीवन के अन्त तक करते रहे। इनकी मृत्यु आजमगढ़ में ही हुई।

रचनायें—

प्रियप्रवास, वैदेही वनवास, चोखे चौपदे, चुभते चौपदे, रस कलश, बोल-चाल, पद्य प्रसून, कल्पना, प्रेमांबु प्रवाह, प्रेम पुष्पोपहार, आदि।

गद्य में भी इन्होंने रचनायें कीं, उनके नाम हैं—ठेठ हिन्दी का ठाठ और अधखिला फूल। वेनिस का बाँका अनुवाद ग्रन्थ है और कबीर वचनावली संग्रह ग्रन्थ है।

काव्यगत विशेषतायें—

"हरिऔध" की गणना अपने समय के महान् कवियों में की जाती है। वे केवल एक महान् कवि ही नहीं थे, अपितु काव्यशास्त्र

के आचार्य भी थे, यह रस कलश से सर्वथा सिद्ध हो जाता है। आलोचकों ने इनकी रचनाओं का वर्गीकरण किया है। पहले वर्ग में वे रचनायें आती हैं जिनका आधार प्राचीन कथायें हैं, जैसे—प्रिय-प्रवास, और वैदेही वनवास।

दूसरे वर्ग में आधुनिक विषयों से सम्बन्ध रखने वाली रचनायें हैं जैसे—चोखे और चुभते चौपदे आदि। तीसरे वर्ग में काव्यशास्त्र सम्बन्धी रचना है जैसे—रस-कलश। इसमें इन्होंने रसों और नायिका-भेदों का वर्णन किया है।

"हरिऔध" जी का प्रसिद्ध ग्रन्थ "प्रियप्रवास" है। इस पुस्तक में राधा और कृष्ण का चित्रण लोक सेवकों के रूप में किया गया है। अन्य शृंगारी कवियों की भाँति इनकी राधा वियोग में हाय करने वाली नहीं हैं। लोक-सेवा की भावना उनमें सदा वर्तमान रहती है। कृष्ण का चित्रण भी हमारे समाज के आदर्शों के उपयुक्त है। इस अनुपम पुस्तक की रचना संस्कृत वृत्तों और पदावली में है। भावों का वर्णन अत्यन्त आकर्षक है। वात्सल्य तो इस पुस्तक में सजीव हो उठा है।

चोखे चौपदे और चुभते चौपदे आधुनिक विषयों पर मुहावरों से भरपूर रचनायें हैं जिनका आकर्षक ढंग उर्दू शायरी को भी मात करने वाला है और प्रभाव में यह उससे बढ़कर है।

भाषा और शैली—

भाषा पर "हरिऔध" जी का असाधारण अधिकार था। ब्रज और खड़ी बोली दोनों में इन्होंने सफल रचनायें की हैं। प्रियप्रवास में खड़ी बोली संस्कृत के समकक्ष हो गई है। रस-कलश की भाषा ब्रज है। चौपदों पर उर्दू की छाप है। वैदेही वनवास में आधुनिक भाषा का प्रांजल रूप है।

५—हरिऔध

(१) प्रभात

प्रकृति वधू ने असित वसन बदला सित पहना।
तन से दिया उतार तारकावलि का गहना॥
उसका नव अनुराग नील नभ-तल पर छाया।
हुई रागमय दिशा निशा ने वदन छिपाया॥

आरंजित हो उषा सुन्दरी ने सुख माना।
लोहित आभा-वलित वितान अधर में ताना॥
नियति करों से छिनी छपाकर की छवि सारी।
उठी धरा पर पड़ी सितासित चादर न्यारी॥

ओस-विंदु ने द्रवित हृदय को सरस बनाया।
अवनी-तल पर विलस-विलस मोती बरसाया॥
खुले कंठ कमनीय गिरा ने बीन बजाई।
विहग-वृन्द ने उमग मधुर रागिनी सुनाई॥

शीतल बहा समीर हुईं विकसित कलिकायें।
तरुदल विलसे बनी ललिततम सब लतिकायें॥
सर में खिले सरोज हो गईं सित सरितायें।
सुरभित हुआ दिगंत चल पड़ीं अलिमालायें॥

हुआ बाल-रवि उदित कनक-निभ किरणें फूटीं।
भरित तिमिर पर परम प्रभामय बनकर टूटीं॥
जगत जगमगा उठा विभा वसुधा में फैली।
खुली अलौकिक ज्योति पुंज की मंजुल थैली॥

बने दिव्य गिरि-शिखर मुकुट-मणि-मंडित पाये ।
कनकाभा मिल गये कलित झरने दिखलाये ॥
मिले सुनहली कांति लसी सुमनावलि सारी ।
दमक उठीं वेलियाँ लाभ कर द्युति अति प्यारी ॥

स्वर्ण तार से रचे चारुतम चादर द्वारा ।
सकल जलाशय लसे बनी उज्ज्वल जल-धारा ॥
दिखा-दिखाकर तरल उरों की दिव्य उमंगें ।
ले-लेकर रवि-बिंब खेलने लगीं तरंगें ॥

हीरक-कण हरिताभ तृणों पर गया उछाला
बनी दूब रमणीय पहनकर मुक्ता-माला ॥
मिले कांतिमय किरण लसे बालू के टीले ।
सारे रजगण बने रजतकण-से चमकीले ॥

जिस जगती को असित कर सकी थी तम-छाया ।
रवि-विकास ने विलस उसे बहुरंग बनाया ॥
कहीं हुई हरिताभ कहीं आरक्त दिखाई ।
कहीं पीत छवि कांत स्वेत किरणें बन पाईं ॥

हुआ जागरित लोक रात्रि गत जड़ता भागी ।
बहा कर्म का स्रोत प्रकृति ने निद्रा त्यागी ॥
विजित तमोगुण हुआ सतोगुण सितता छाई ।
चकवी चावों भरी पास चकवे के आई ॥

पहने कुंजन-कलित क्रीट, मुक्तावलि माला ॥
विकच कुसुम का हार, विभाकर-कर का पाला ॥
प्राची के कमनीय अंक में लसित दिखाया ।
लिये करों में कमल प्रभात विहसता आया ॥

(२) संध्या वर्णन

[द्रुतविलम्बित छंद]

दिवस का अवसान समीप था
गगन था कुछ लोहित हो चला ॥
तरु-शिखा पर थी अब राजती।
कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रभा ॥१॥

विपिन बीच विहंगम वृन्द का।
कल-निनाद विवर्धित था हुआ ॥
ध्वनिमयी-विविधा-विहगावली ।
उड़ रही नभ-मण्डल मध्य थी ॥२॥

अधिक और हुई नभ-लालिमा।
दश-दिशा अनुरंजित हो गई ॥
सकल पादप-पुंज हरीतिमा।
अरुणिमा विनिमज्जित सी हुई ॥३॥

झलकने पुलिनों पर भी लगी।
गगन के तल की यह लालिमा ॥
सरित औ सर के जल में पड़ी।
अरुणता अतिहीं रमणीय थी ॥४॥

अचल के शिखरों पर जा चढ़ी।
किरण पादप-शीश विहारणी ॥
तरणि-बिम्ब तिरोहित हो चला।
गगन-मंडल मध्य शनैः शनैः ॥५॥

(३) एक बूँद

ज्यों निकल कर बादलों की गोद से ।
थी अभी एक बूँद कुछ आगे बढ़ी ॥
सोचने फिर फिर यही जी में लगी ।
आह क्यों घर छोड़कर मैं यों कढ़ी ॥१॥

दैव मेरे भाग में क्या है बदा ।
मैं बचूँगी या मिलूँगी धूल में ॥
या जलूँगी गिर अँगारे पर किसी ।
चू पड़ूँगी या कमल के फूल में ॥२॥

बह गई उस काल एक ऐसी हवा ।
वह समुन्दर ओर आई अनमनी ॥
एक सुन्दर सीप का मुँह था खुला ।
वह उसी में जा पड़ी मोती बनी ॥३॥

लोग यों ही हैं झिझकते सोचते ।
जब कि उनको छोड़ना पड़ता है घर ॥
किन्तु घर का छोड़ना अक्सर उन्हें ।
बूँद लौं कुछ और ही देता है कर ॥४॥



मैथिलीशरण गुप्त

६—मैथिलीशरण गुप्त

(जन्म सं० १६४३)

परिचय—

श्री मैथिलीशरण गुप्त का निवास-स्थान चिरगाँव जिला झाँसी है और पिता का नाम रामचरण। इन्होंने अपने पिता से रामभक्ति और कवित्व दोनों ही पाया, आगे चलकर इन दोनों का विकास हुआ। वर्तमान काल में ये सर्वश्रेष्ठ कवि समझे जाते हैं। राष्ट्रीय भावनाओं का जैसा प्रतिनिधित्व इन्होंने किया वैसा आज-कल का कोई भी कवि न कर सका। स्वयं वैष्णव एवं राम के अनन्य उपासक होते हुये भी इन्होंने अपने ग्रन्थों में पर्याप्त धार्मिक उदारता एवं सहिष्णुता का परिचय दिया। कृष्ण और बुद्ध को भी इन्होंने राम के रूप में देखा है।

"धनुर्बाण या वेणु लो, श्याम रूप के संग।
मुझ पर चढ़ने से रहा राम दूसरा रंग॥"

रचनायें—

(१) "भारत भारती" (प्राचीन गौरव गाथा और भविष्य के लिये उद्बोधन) (२) जयद्रथ वध, (३) अनघ (बौद्ध जातक के आधार पर गाँधीवाद का मूर्तिमान चित्र) (४) त्रिपथगा (५) गुरुकुल (सिक्ख गुरुओं का वर्णन) (६) पंचवटी (७) द्वापर (८) नहुष (९) कुणाल गीत (१०) काबा कर्बला (हुसेन और उनके परिवार का कारुणिक चित्र) (११) झंकार (रहस्यवादी कविताओं का संग्रह) (१२) अर्जन और विसर्जन (ईसाई धर्म सम्बन्धी) (१३) मेघनाथ वध (अनुवाद) (१४) चन्द्रहास (नाटक)। इनकी प्रतिभा का पूर्ण प्रकाश (१५) साकेत और (१६) यशोधरा में देखने को मिलता है।

काव्यगत विशेषतायें—

गुप्त जी वर्तमान कवियों में सबसे अधिक लोकप्रिय हैं । इसके दो कारण हैं—प्रथम तो यह कि आपकी कविताओं में सामयिक विषयों का चुनाव हुआ है और दूसरा यह कि आपकी कविताओं में भावुकता की सरल आडम्बरविहीन एवं निष्कपट अभिव्यंजना मिलती है ।

इनकी साकेत नामक पुस्तक खड़ी बोली के महाकाव्यों में अपना प्रमुख स्थान रखती है। कैकेयी और उर्मिला को इन्होंने सर्वदा नवीन दृष्टि से देखा है। सिद्धराज नामक काव्य पुस्तक इन्होंने अतुकान्त छन्दों में लिखी है और इसमें इन्हें अभूतपूर्व सफलता मिली ।

भाषा और शैली—

गुप्त जी की भाषा खड़ी बोली है और वह बड़ी शुद्ध ,परिमार्जित एवं सरल है। उर्दू के शब्दों से ये बचते रहते हैं। मुहाविरों और लोकोक्तियों का प्रयोग गुप्त जी बहुत कम करते हैं और करते भी हैं तो उनका अनुवाद करके जिससे उनकी स्वाभाविक मधुरता नष्ट हो जाती है। किन्तु इनका सर्वाधिक प्रिय छन्द है हरि गीतिका। यों तो इन्होंने बहुत से छन्दों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। साकेत के नवम सर्ग में छन्दों की अनेकता दर्शनीय है। झंकार, यशोधरा और साकेत में स्थान-स्थान पर गीति शैली के पद बड़े सरस और मर्मस्पर्शी हैं। गुप्त जी वस्तुतः प्रबन्ध शैली में अत्यन्त सफल हुये हैं। अतः मुक्तक रचनाओं की अपेक्षा इनके खण्ड काव्य और महाकाव्य अधिक हृदयस्पर्शी हैं ।

६—मैथिलीशरण गुप्त

(१) भारत माता

जय-जय भारत माता !

तेरा बाहर भी घर जैसा रहा प्यार ही पाता।

ऊँचा हिया-हिमालय तेरा,
उसमें कितना दरद भरा !
फिर भी आग दबा कर अपनी
रखता है वह हमें हरा।

सौ सोतों से फूट-फूट कर पानी टूटा आता।

जय-जय भारत माता !

कमल खिले तेरे पानी में,
धरती पर हैं आम फले,
उस धानी आँचल में आहा !
कितने देश-विदेश पले।

भाई-भाई लड़े भले ही, टूट सका क्या नाता ?

जय जय भारत माता !

तेरी लाल दिशा में ही माँ,
चंद्र-सूर्य चिरकाल उगें,
तेरे आँगन में मोती ही
हिल-मिल तेरे हंस चुगें।

सुख बढ़ जाता, दुख घट जाता, जब वह है बँट जाता।

जय-जय भारत माता !

तेरे प्यारे बच्चे हम सब
बंधन में बहु बार पड़े,
किन्तु मुक्ति के लिए यहाँ हम
कहाँ न जूझे, कब न लड़े ?
मरण शांति का दाता है तो जीवन क्रांति-विधाता।
जय जय भारत माता !

(२) संलाप

बोला घन गम्भीर-गिरा-पूर्वक भूतल से—
"करता हूँ मैं आर्द्र तुझे कैसा निज बल से ?"
भूतल ने तब कहा कि—"इसमें क्या संशय है,
मिला कहाँ से भला तुम्हें यह पावन पय है ?"

* * *

घनमाला ने कहा सूर्य्य के सम्मुख जाकर—
"तेरा सारा तेज देखती हूँ मैं आकर !
बोला रवि मुँह फेर कि—"यह उसका ही फल है,
स्वकरों से जो पिलाया मैंने जल है !"

* * *

फल ने तरु से कहा कि—"मैं गौरव हूँ तेरा,
रखता है अभिलाष देख सब कोई मेरा।"
"ऐसा गौरव नहीं चाहिए"—बोला तरुवर—
"इसीलिए हैं लोग मारते मुझको पत्थर ॥"

"कहा बाण ने—काल दूर तक मैं ही दूँगा,"
बोला चाप—"परन्तु सहायक जब मैं हूँगा।"
प्रत्यंचा ने कहा—"कहो सब अपनी अपनी."
कर बोला—'है मुझे मौन माला ही जपनी।"

* * *

बोला विकल पतंग दीप में जलता जलता,
"फल ऐसा ही स्नेह-विटप पर है क्या फलता?"
कहा दीप ने—महा कठिन है इसका धारण,
पहले ही जल रहा यहाँ मैं जिसके कारण।"

* * *

बोला चुम्बक—"नीति-रीति कैसी है मेरी,"
कहा सार ने—"प्रीति खींच लाती है तेरी।"

* * *

कहा वृक्ष ने—"उच्च और उपकारी हूँ मैं,"—
बोली वल्ली—"तभी सदैव तुम्हारी हूँ मैं।"

* * *

कहा अनल ने—'अहा! तेज मेरा है कितना"।
जल ने उत्तर दिया कि—"मैं शीतल हूँ जितना!"

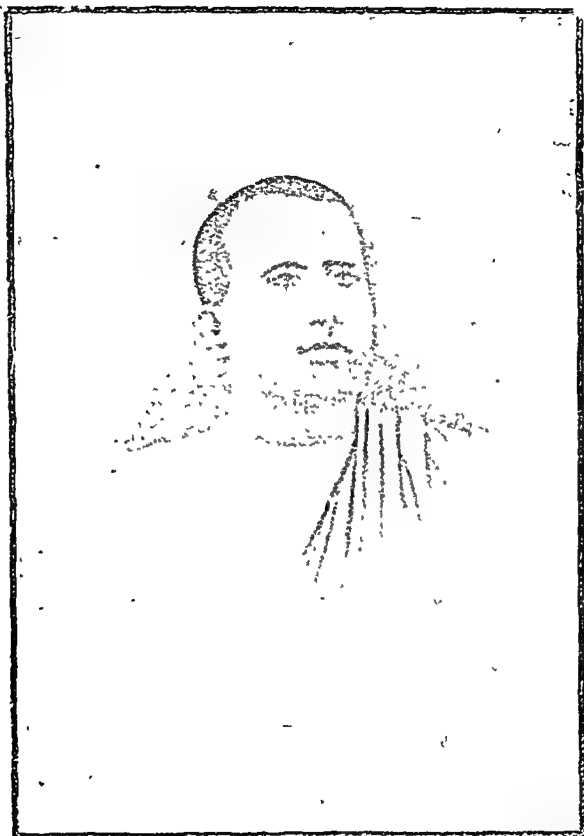
* * *

कहा व्योम ने—"भूमि! पड़ी नीचे तू सरती,"—
"किन्तु शून्य तो नहीं"—व्योम से बोली धरती।

* * *

असि बोली—"है कौन सहायक और समर में?"
"हाँ, जो रक्षा करे"—ढाल बोली उत्तर में।"

—



जयशंकर 'प्रसाद'

७—जयशंकर 'प्रसाद'

(जन्म सं० १९४६, मृत्यु सं० १९९४)

परिचय—

"प्रसाद" जी का जन्म माघ शुक्ल १२ संवत् १९४६ वि० में काशी के सुप्रसिद्ध "सुँघनी साहु" के घराने में हुआ। यह घराना दान और पुण्य के कार्यों में सदा अग्रगण्य रहा। "प्रसाद" जी में इसी कारण करुणा तथा दया-दाक्षिण्य की भावना अधिक मात्रा में पाई जाती है। बचपन में अंग्रेजी की आठवीं कक्षा तक की शिक्षा आपने क्वींस कालेज में पाई। पश्चात् घर पर ही संस्कृत, बंगला आदि का अध्ययन किया। आपका पुरातत्व और इतिहास का अध्ययन अत्यन्त गंभीर था। आपके अनुसंधानात्मक लेख आपके नाटकों की भूमिकाओं के रूप में पाए जाते हैं। सं० १९९४ की कार्तिक शुक्ल ११ को आप का निधन हो गया।

रचनायें—

काव्यग्रन्थ—लहर, झरना, आँसू और कामायनी।

नाटक—सज्जन, करुणालय, विशाख, राज्यश्री, अजातशत्रु, कामना, जनमेजय का नागयज्ञ, स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त, एक घूँट, ध्रुव स्वामिनी।

उपन्यास—कङ्काल, तितली, इरावती (अपूर्ण)।

कहानी संग्रह—छाया, प्रतिध्वनि, आकाशदीप, आँधी, इन्द्रजाल।

निबन्ध संग्रह—काव्य और कला।

काव्यगत विशेषतायें—

आरम्भ में "प्रसाद" जी व्रज भाषा में कविता किया करते थे। सं० १९७० के आस-पास वे खड़ी बोली में आये। इनकी प्रतिभा

सर्वतोमुखी थी। इन्होंने निबन्ध, कविता, कहानी और उपन्यास आदि सभी कुछ लिखे।

नाटककार के रूप में वे हिन्दी में सर्वश्रेष्ठ हैं। इनकी कवितायें कहीं कहीं दार्शनिकता का समावेश होने के कारण अत्यन्त दुरूह हो गई हैं। प्रकृति के रमणीय और भीषण दोनों रूपों का इन्होंने सुन्दर चित्रण किया है। कामायनी नामक महाकाव्य इनकी अमर कृति है।

शैली और भाषा—

इनकी भाषा संस्कृत के तत्सम शब्दों से पूर्ण विशुद्ध हिन्दी है। यद्यपि उसमें फारसी और उर्दू के शब्द भी भूले भटके आ गये हैं। वे रेती या बालू के स्थान पर "सिकता" का ही प्रयोग अधिक पसन्द करते थे। भावों की दुरूहता के कारण इनकी अधिकांश कवितायें अस्पष्ट हो गई हैं। परन्तु जहाँ भावों में सरसता है वहाँ भाषा भी सरल एवं प्रसाद गुणपूर्ण हो गई है। इनकी अनेक रचनायें छंद के बन्धन से सर्वथा मुक्त एवं अतुकान्त भी हैं।

७—जयशंकर 'प्रसाद'

(१) चित्रकूट में श्री राम

उदित कुमुदिनी-नाथ हुए प्राची में ऐसे।
सुधा-कलश रत्नाकर से उठता हो जैसे॥
धीरे धीरे उठे नई आशा से मन में।
क्रीड़ा करने लगे स्वच्छ स्वच्छंद गगन में॥
चित्रकुट भी चित्र लिखा-सा दीख रहा था।
मंदाकिनी-तरंग उसी से खेल रहा था॥
स्फटिक-शिला आसीन राम-वैदेही ऐसे।
निर्मल जल में नीलकमल-नलिनी हों जैसे॥
निज प्रियतम के संग सुखी सी कानन में भी।
प्रेम भरा था वैदेही के आनन में भी॥
मृग-शावक के साथ मृगी भी देख रही थी।
सरल विलोकन जनकसुता से सीख रही थी॥
निर्वासित थे राम, राज्य था कानन में भी।
सच ही है श्रीमान् भोगते सुख वन में भी॥
चंद्रातप था व्योम, तारका रत्न जड़े थे।
स्वच्छ दीप था सोम, प्रजा तरुपुंज खड़े थे॥
शांत नदी का स्रोत बिछा था अति सुखकारी।
कमल-कली का नृत्य हो रहा था मनहारी॥

✓ बोल उठा जो हंस देखकर कमल-कली को।
तुरत रोकना पड़ा गूँजकर चतुर अली को॥
हिली आम की डाल चला ज्यों नवल हिंडोला।
आह कौन है? पंचम स्वर से कोकिल बोला॥
मलयानिल प्रहरी-सा फिरता था उस वन में।
शांति शांत हो बैठी थी कामद कानन में॥
राघव बोले देख जानकी के आनन को।
स्वर्गंगा का कमल मिला कैसे कानन को?
नील मधुप को देख वहीं उस कंज-कली ने।
स्वयं आगमन किया, कहा यह जनक लली ने॥
बोले राघव—प्रिये, भयावह से इस वन में।
शंका होती नहीं तुम्हारे कोमल मन में॥
कहा जानकी ने हँसकर—उसको है क्या डर।
जिसके पास प्रवीण धनुर्धर ऐसा सहचर॥
कहा राम ने—अहा, महल मंदिर मनभावन।
स्मरण न होते, कहो, तुम्हें क्या वे अति पावन॥
रहते थे झनकार-पूर्ण जो तव नूपुर से।
सुरभिपूर्ण पुर होता था जिस अंतःपुर से॥
जनक-सुता ने कहा—नाथ, यह क्या कहते हैं।
नारी के सुख सभी साथ पति के रहते हैं॥
कहो उसे प्रियप्राण, अभाव रहा फिर किसका।
विभव चरण का रेणु तुम्हारा ही है जिसका॥

(२) भारत-महिमा

हिमालय के आँगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार।
उषा ने हँस अभिनन्दन किया और पहनाया हीरक-हार॥

जगे हम, लगे जगाने विश्व लोक में फैला फिर आलोक।
व्योम-तम-पुंज हुआ तब नाश अखिल संसृति हो उठी अशोक॥

विमल वाणी ने वीणा ली कमल-कोमल-कर में सप्रीत।
सप्तस्वर सप्तसिंधु में उठे छिड़ा तब मधुर साम-सङ्गीत॥

बचा कर बीज रूप से सृष्टि नाव पर झेल प्रलय का शीत।
अरुण-केतन लेकर निज हाथ वरुण-पथ में हम बढ़े अभीत॥

सुना है दधीचि का वह त्याग हमारी जातीयता का विकास।
पुरंदर ने पवि से है लिखा अस्थि-युग का मेरा इतिहास॥

सिंधु सा विस्तृत और अथाह एक निर्वासित का उत्साह।
दे रही अभी दिखाई भग्न मग्न रत्नाकर में वह राह॥

धर्म्म का ले लेकर जो नाम हुआ करती बलि, कर दी बन्द।
हमीं ने दिया शांति-संदेश सुखी होते देकर आनंद॥

विजय केवल लोहे की नहीं, धर्म्म की रही धरा पर धूम।
भिक्षु होकर रहते सम्राट् दया दिखलाते घर-घर घूम॥

यवन को दिया दया का दान चीन को मिली धर्म्म की सृष्टि।
मिला था स्वर्ण-भूमि को रत्न शील की सिंहल को भी दृष्टि॥

किसी का हमने छीना नहीं प्रकृति का रहा पालना यहीं।
हमारी जन्मभूमि थी यहीं, कहीं से हम आये थे नहीं॥

जातियों का उत्थान-पतन आँधियाँ, झड़ी, प्रचंड समीर।
खड़े देखा, झेला हँसते प्रलय में पले हुए हम वीर॥

चरित थे पूत, भुजा में शक्ति, नम्रता रही सदा सम्पन्न।
हृदय के गौरव में था गर्व किसी को देख न सके विपन्न॥

हमारे संचय में था दान अतिथि थे सदा हमारे देव।
वचन में सत्य, हृदय में तेज प्रतिज्ञा में रहती थी टेव॥

वही है रक्त, वही है देश, वही साहस है, वैसा ज्ञान ।
वही है शांति, वही है शक्ति, वही हम दिव्य आर्य्य-संतान ॥
जियें तो सदा इसी के लिये यही अभिमान रहे यह हर्ष ।
निछावर कर दें हम सर्वस्व हमारा प्यारा भारतवर्ष ॥

देखा है। अतः ये प्रकृति एवं सौंदर्य के ही कवि कहे जाते हैं। स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ का इनकी विचारधारा पर अत्यन्त प्रभाव पड़ा है, इसलिये अन्य छायावादियों के विपरीत इनमें आशा और उल्लास की भावना विशेष पायी जाती है। युग परिवर्तन के साथ साथ पंत की विचारधारा में भी परिवर्तन होता गया है। युग की माँग पर ये स्वप्न संसार छोड़कर पृथ्वी पर आ जाते हैं और मानव यशोगान के साथ साथ नूतन जग का निर्माण करने को तत्पर दिखाई देते हैं। इस प्रकार पंत हिन्दी भाषा के आधुनिक शैली के कवियों में अपनी सुकुमार कल्पनाओं एवं भावना के चित्रण के कारण सर्वश्रेष्ठ कवि ठहरते हैं।

भाषा और शैली—

पंत जी की भाषा संस्कृत-निष्ठ विशुद्ध हिन्दी है। खड़ी बोली की कर्कशता को दूर कर उसमें कोमल-कान्त पदावली का समावेश करने का श्रेय पंत को ही है। इनके सुकुमार भावों का चित्रण के लिये इनकी ललित भाषा अत्यन्त उपयुक्त है। इन्होंने शब्द साधन पर विशेष ध्यान दिया है। प्रगीतात्मक शैली के लिये इनसे बढ़कर उपयोगी शब्दावली किसी अन्य कवि में नहीं मिल सकती। छन्दों के बन्धन से ये अपने को विमुक्त कर चुके हैं और उसे काव्य के लिये उपयोगी नहीं समझते। ये मौलिक कलाकार हैं और जिस भावना से ये साधना कर रहे हैं वह बड़ी पवित्र और कभी कभी जनहित की है।

८—सुमित्रानंदन पंत

(१) गीत

मेरा प्रतिपल सुन्दर हो।
प्रतिदिन सुन्दर, सुखकर हो,

यह पल पल का लघु जीवन

सुन्दर, सुखकर, शुचितर हो!
हों बूँदें अस्थिर, लघुतर,
सागर में बूँदें सागर;

यह एक बूँद जीवन का
मोती सा सरस, सुघर हो!

मधु के ही कुसुम मनोहर
कुसुमों की ही मधु प्रियतर,

यह एक मुकुल मानस का
प्रमुदित, मोदित, मधुमय हो!
मेरा प्रतिपल निर्भय हो,
निःसंशय, मंगलमय हो,
यह नव-नव पल का जीवन,
प्रतिपल तन्मय, तन्मय हो!

(२) बादल

सुरपति के हम ही हैं अनुचर,
जगत्प्राण के भी सहचर।
मुग्ध शिखी के नृत्य मनोहर,
कृषक-बालिका के जलधर॥
जलाशयों में कमल दलों-सा,
हमें खिलाता नित दिनकर।
पर बालक सा वायु सकल-दल,
बिखरा देता, चुन सत्वर॥

लघु-लहरों के चल-पलनों में,
हमें झुलाता जब सागर।
वही चील-सा झपट, बाँह गह,
हमको ले जाता ऊपर॥
विपुल कल्पना-से त्रिभुवन की,
विविध रूप धर, भर नभ-अंक।
हम फिर क्रीड़ा-कौतुक करते,
छा अनन्त-उर में निःशंक॥

कभी चौकड़ी भरते मृग से,
भू पर चरण नहीं धरते।
मत्त-मत्त गज कभी झूमते,
सजग शशक नभ को चरते॥
कभी अचानक भूतों का सा,
प्रकटा विकट महा-आकार।
कड़क कड़क जब हँसते हम सब,
थर्रा उठता है संसार॥

फिर परियों के बच्चों से हम,
सुभग सीप के पंख पसार।
समुद पैरते शुचि ज्योत्स्ना में,
पकड़ इंदु के कर सुकुमार॥

अनिल-विलोडित गगन-सिंधु में,
प्रलय-बाढ़-से चारों ओर।
उमड़ उमड़ हम लहराते हैं,
वरसा उपल, तिमिर घनघोर॥

दमयंती-सी कुमुद-कला के,
रजत-करों में फिर अभिराम।
स्वर्ण-हंस से हम मृदु-ध्वनि कर,
कहते प्रिय-संदेश ललाम॥

व्योम-विपिन में जब वसंत-सा,
खिलता नव-पल्लवित प्रभात।
वहते हम तव अनिल-स्रोत में,
गिरि तमाल-तरु-के-से पात॥

उदयाचल से बालहंस फिर,
उड़ता अंबर में अवदात।
फैल स्वर्ण-पंखों से हम भी,
करते द्रुत मारुत से बात॥

धीरे-धीरे संशय से उठ,
बढ़ अपयश-से शीघ्र अछोर।
नभ के उर में उमड़ मोह-से,
फैल लालसा-से निशि-भोर॥

इंद्रचाप-सी व्योम-भृकुटि पर,
लटक मौन-चिंता-से घोर।
घोष भरे विप्लव भय से हम,
छा जाते द्रुत चारों ओर॥
पर्वत से लघु धूलि, धूलि से,
पर्वत बन पल में, साकार।
कालचक्र-से चढ़ते, गिरते,
पल में जलधर, फिर जल-धार॥

कभी हवा में महल बनाकर,
सेतु बाँधकर कभी अपार।
हम विलीन हो जाते सहसा,
विभव-भूति ही से निस्सार॥

९—सुभद्रा कुमारी चौहान

(जन्म सं० १९६१, मृत्यु सं० २००४)

परिचय—

श्री सुभद्रा कुमारी चौहान का जन्म प्रयाग में हुआ। पन्द्रह वर्ष की अवस्था से ही इन्होंने कविता लिखना प्रारम्भ किया, " मुकुल " इनकी कविताओं का सुन्दर संग्रह है जिस पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से उन्हें सेकसारिया पुरस्कार मिला था, साहित्य सेवा के साथ देश-सेवा इनकी विशेषता थी। इन्हें देश-सेवा के कारण कई बार जेल भी जाना पड़ा। ये जबलपुर की रहने वाली थीं और सम्वत् २००४ में मोटर दुर्घटना से इनका देहान्त हुआ। मध्य प्रदेश के चुने हुये नेताओं में इनका नाम लिया जाता है।

काव्यगत विशेषता—

सुभद्रा कुमारी की कविताओं में साधारण जनता का हृदय बोलता है। राष्ट्रीयता इनके काव्य का विशेष गुण है। इसमें भारत का अभिमान और गौरव मुखरित हुआ है। सुभद्रा के काव्य में जीवन की कोमल भावनाओं का चित्रण है, उसमें नारी जीवन, पारिवारिक जीवन और लोक जीवन सुधार की रचनायें भी हैं। इनकी "झाँसी की रानी" कविता ने इनको अत्यन्त लोकप्रिय बना दिया।

भाषा और शैली—

इनकी भाषा भावों की अनुगामिनी है। "झाँसी की रानी" कविता वीर रस की है। उसकी भाषा में ओज गुण पंक्ति पंक्ति पर झलकता है। पर वात्सल्य रस की कविता में पद-लालित्य की छटा है। राष्ट्रीय कविताओं में उर्दू के शब्दों का निस्संकोच एवं कभी-कभी आवश्यकता से अधिक प्रयोग भी पाया जाता है।

९—सुभद्रा कुमारी चौहान

(१) झाँसी की रानी

सिंहासन हिल उठे राजवंशों ने भृकुटी तानी थी,
बूढ़े भारत में भी आयी फिर से नयी जवानी थी।
गुमी हुई आजादी की कीमत सबने पहचानी थी,
दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी।
चमक उठी सन् सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥ १॥

कानपुर के नाना की मुँह बोली बहिन छबीली थी,
लक्ष्मीबाई नाम पिता की वह सन्तान अकेली थी।
नाना के सँग पढ़ती थी वह नाना के संग खेली थी,
बरछी, ढाल, कृपाण, कटारी, उसकी यही सहेली थी।
वीर शिवाजी की गाथाएँ उसको याद जबानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥ २॥

लक्ष्मी थी या दुर्गा थी वह स्वयं वीरता का अवतार,
देख मराठे पुलकित होते उसकी तलवारों के वार।
नकली युद्ध-व्यूह की रचना और खेलना खूब शिकार,
सैन्य घेरना दुर्ग तोड़ना ये थे उसके प्रिय खिलवाड़।
महाराष्ट्र कुल देवी उसकी भी आराध्य भवानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥ ३॥

हुई वीरता की, वैभव के साथ सगाई झाँसी में,
ब्याह हुआ रानी बन आई लक्ष्मी बाई झाँसी में।
राजमहल से बजी बधाई खुशियाँ छाईं झाँसी में,
सुभट बुन्देलों की विरुदावलि सी वह आई झाँसी में।
चित्रा ने अर्जुन को पाया शिव से मिली भवानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी॥ ४॥

उदित हुआ सौभाग्य मुदित महलों में उजियाली छाई,
किन्तु काल गति चुपके-चुपके काली घटा घेर लाई।
तीर चलाने वाले कर में उसे चूड़ियाँ कब भाईं,
रानी विधवा हुई हाय विधि को भी दया नहीं आई।
निस्सन्तान मरे राजा जी रानी शोक समानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥ ५॥

बुझा दीप झाँसी का तब डलहौजी मन में हरषाया,
राज्य हड़प करने का उसने यह अच्छा अवसर पाया।
फौरन फौजें भेज दुर्ग पर अपना झंडा फहराया,
लावारिस का वारिस बनकर ब्रिटिश राज्य झाँसी आया।
अश्रु पूर्ण रानी ने देखा झाँसी हुई बिरानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥ ६॥

अनुनय-विनय नहीं सुनता है, विकट शासकों की माया,
व्यापारी बन दया चाहता था यह जब भारत आया।
डलहौजी ने पैर पसारे अब तो पलट गई काया,
राजाओं नव्वाबों को भी उसने पैरों ठुकराया।

रानी दासी बनी, बनी वह दासी अब महरानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी ॥७॥

छिनी राजधानी देहली की लखनऊ छीना बातों बात,
कैद पेशवा था बिठूर में हुआ नागपुर का भी घात।
उदैपूर, तंजोर, सतारा, करनाटक की कौन बिसात,
जबकि सिंध पंजाब ब्रह्म पर अभी हुआ था वज्रनिपात।
बंगाले मद्रास आदि का भी तो वही कहानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी ॥८॥

रानी रोई रनिवासों में, बेगम गम से थीं बेजार,
उनके गहने कपड़े बिकते थे कलकत्ते के बाजार।
सरे आम नीलाम छापते थे अँग्रेजों के अखबार,
नागपूर के जेवर ले लो लखनऊ के लो नौलखहार।
यों परदे की इज्जत परदेशी के हाथ बिकानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी ॥९॥

कुटियों में थी विषम वेदना महलों में आहत अपमान,
वीर सैनिकों के मन में था अपने पुरखों का अभिमान।
नाना धुन्धूपंत पेशवा जुटा रहा था सब सामान,
बहिन छबीली ने रणचंडी का कर दिया प्रकट आह्वान
हुआ यज्ञ प्रारम्भ उन्हें तो सोई ज्योति जगानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी ॥१०॥

महलों ने दी आग झोपड़ी ने ज्वाला सुलगाई थी,
यह स्वतंत्रता की चिनगारी अन्तरतम से आई थी।
झाँसी चेती, दिल्ली चेती, लखनऊ लपटें छाई थीं,
मेरठ कानपूर पटना ने भारी धूम मचाई थी।
जबलपूर कोल्हापुर में भी कुछ हलचल उकसानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी ॥११॥

इस स्वतंत्रता महायज्ञ में कई वीरवर आये काम,
नाना :धुन्धूपंत ताँतियाँ चतुर अजीमुल्ला सरनाम।
अहमदशाह मौलवी, ठाकुर कुँवरसिंह सैनिक अभिराम,
भारत के इतिहास गगन में अमर रहेंगे जिनके नाम।
लेकिन आज जुर्म कहलाती उनकी जो कुर्बानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी ॥१२॥

इनकी गाथा छोड़ चलें हम झाँसी के मैदानों में,
जहाँ खड़ी हैं लक्ष्मीबाई मर्द बनी मर्दानों में।
लेफ्टिनेन्ट वाकर आ पहुँचा आगे बढ़ा जवानों में,
रानी ने तलवार खींच ली हुआ द्वन्द्व असमानों में।
जख्मी होकर वाकर भागा उसे अजब हैरानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी ॥१३॥

रानी बढ़ी कालपी आई कर सौ मील निरन्तर पार,
घोड़ा थककर गिरा भूमि पर गया स्वर्ग तत्काल सिधार।
यमुना तट पर अँग्रेजों ने फिर खाई रानी से हार,
विजयी रानी आगे चलदी किया ग्वालियर पर अधिकार।

अँग्रेजों के मित्र सिंधिया ने छोड़ी रजधानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी ॥१४॥
विजय मिली, पर अंग्रेजों की फिर सेना घिर आई थी,
अब के जनरल स्मिथ सम्मुख था उसने मुँह की खाई थी।
काशी और मंदरा सखियाँ रानी के संग आई थीं,
युद्ध क्षेत्र में उन दोनों ने भारी मार मचाई थी।
पर पीछे ह्यूरोज आ गया हाय! घिरी अब रानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी ॥१५॥
तो भी रानी मार-काट कर चलती बनी सैन्य के पार,
किन्तु सामने नाला आया, था वह संकट विषम अपार।
घोड़ा अड़ा नया घोड़ा था इतने में आ गये सवार,
रानी एक, शत्रु बहुतेरे, होने लगे वार पर वार।
घायल होकर गिरी सिंहिनी उसे वीर गति पानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी ॥१६॥
रानी गई सिधार चिता अब उसकी दिव्य सँवारी थी,
मिला तेज से तेज, तेज की वह सच्ची अधिकारी थी।
अभी उम्र कुल तेइस की थी, मनुज नहीं अवतारी थी,
हमको जीवित करने आई बन स्वतन्त्रता नारी थी।
दिखा गई पथ, सिखा गई हमको जो सीख सिखानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी ॥१७॥
जाओ रानी, याद रखेंगे ये कृतज्ञ भारतवासी,
यह तेरा बलिदान जगावेगा स्वतंत्रता अविनासी।

होवें चुप इतिहास लगे सच्चाई को चाहे फाँसी,
हो मदमाती विजय, मिटा दे गोलों से चाहे झाँसी।
तेरा स्मारक तू ही होगी तू खुद अमिट निशानी थी,
बुन्देले हर बोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी ॥१८॥

(२) मेरा जीवन

(१)
मैंने हँसना सीखा है,
मैं नहीं जानती रोना।
बरसा करता पल-पल पर
मेरे जीवन में सोना

(२)
मैं अब तक जान न पाई
कैसी होती है पीड़ा?
हँस हँस जीवन में कैसे
करती है चिन्ता क्रीड़ा

(३)
जग है असार सुनती हूँ
मुझको सुख-सार दिखाता
मेरी आँखों के आगे
सुख का सागर लहराता

(४)
कहते हैं होती जाती
खाली जीवन की प्याली।
पर मैं उसमें पाती हूँ
प्रति पल मदिरा मतवाली

(५)
उत्साह, उमंग निरंतर
रहते मेरे जीवन में।
उल्लास विजय था हँसता
मेरे मतवाले मन में।

(६)
आशा आलोकित करती
मेरे जीवन में प्रतिक्षण।
हैं स्वर्ण-सूत्र से वलयित
मेरी असफलता के घन

(७)
सुख भरे सुनहले बादल,
रहते हैं मुझको घेरे
विश्वास, प्रेम, साहस हैं
जीवन के साथी मेरे।

टिप्पणियाँ

१—सूरदास

(१)वेगसी—शीघ्रता से। कर करि—हाथ से। सैन—इंगित, इशारा। अमर—देवता। भामिनि—स्त्री (२) नान्हरिया—छोटे से। बयन—वचन । हलधर—बलराम । हौं—मैं । आगम-निगम—वेद-शास्त्र। नेति—यह नहीं है। उनमान—अनुमान । (३) नवनीत मक्खन । मंडित—शोभित । लटलटकनि......पिये—काली काली अलकें बिखरी हुईं ऐसी जान पड़ती हैं मानों मस्त भौंरे उन्मत्त करने वाले मद को पीकर झूम रहे हों। बज्र—हीरा (जो कठुले में जड़ा है)। केहरि- नख—सिंह का नाखून; बच्चों को दीठ न लग जाय इसलिए प्रायः सिंह या बाघ का नाखून उनके पदक के साथ गूँथ दिया जाता है। (४) घरणी—गृहिणी। सरणी—शरण। तरनी—नाव (५) कजरी—काली गाय। श्री—सौंदर्य। बैस—वयस, उम्र। अनुदिन—नित्य। कच—बाल। रढ़ै—कढ़ै। डढ़ै—जलती है। (६) दामोदर—कृष्ण। जोगैहो—सँभाल कर रखना। (७) दाऊ—बलराम जी। जायो—उत्पन्न किया। खीझै—क्रोध करती है। चबाई—लबार धूत—धूर्त्त। गोधन—गायों की। (८) बलैया—बला। खिसैया—खिसिया कर। धिरयो—धमकाया, डाँटा। (९) गोसैयाँ—स्वामी। कछु—कुछ अधिक। न बसत—न तुम्हारे गाँव में बसते हैं। रुहठि—रुठता है। (१०) मौड़ा—बालक गण। थरस गयो--त्रस्त हो गया, डर गया (११) सौंह—सौगन्ध। (१२) छोह—प्रेम । आन—शपथ। औरै—और कुछ। औरै लावति—मुझे दोष लगाती हो। हँसति—हँसी में। (१३) विषान—विषाण; तुरही; सींग का बाजा।

२–तुलसीदास

बरबस—(बलपूर्वक) आग्रह पूर्वक । आना—लाया । मरमु—भेद । मूरि—जड़ी, औषधि । मुनि घरनी—अहल्या । बाट परै—मेरी जीविका मारी जायगी । कबारू—धंधा, व्यवसाय । पखारन—प्रक्षालन । राउरि—आपकी । बरु—भले ही । अयन—घर । चितै— देखकर । आनु—लाओ । देवसरि—गंगा । कठवता—काष्ठ-पात्र । सिहाहीं—सराहना करना । भलि पूरी—भरपूर, पर्याप्त । मज्जनु—स्नान । बहोरी—लौटकर । लोकप—लोकपाल । बिलोकत तोरे—तुम्हारी कृपादृष्टि से । सब सिधि—अष्ट सिद्धियाँ । कोसला—कौशल देश, अयोध्या । पूजिहि—पूर्ण होगी । करनि—करूँगा । रजाई—राजाज्ञा । हुलासू—हुलास, आनन्द । ग्याति—जाति बिरादरी । सुपासू—सुविधा । प्रतिपच्छिन—शत्रुगण । बर—श्रेष्ठ । कलुष—पाप । अनीक—सेना । सुठि—अत्यन्त । अछयबट—अक्षयवट । गुनग्राम—गुण समूह । कुंजर—हाथी । मृगराऊ—सिंह । बेनी—त्रिवेणी । अमी—अमृत । अवधि—सीमा । उपचार—उपाय । अघाने—तृप्त हो गये । बचन अगोचर—अकथनीय । लोयन—लोचन, नेत्र । मनु संग पठाई—अपना मन उनके साथ छोड़ कर । बूझत—पूछते हुये । बय बिरिध—वयोवृद्ध । जुगति—उपाय । रबितनुजा—यमुना । भाए—विचार से । कानन—जंगल । सिहाना—ईर्ष्या मिश्रित सराहना । अमरावति—इन्द्रपुरी । अवगाहहिं—स्नान करते हैं । बिबुध गण—देवता गण । सुरमणि—चिन्तामणि जिसकी प्राप्ति से सब कामनायें पूर्ण होती हैं । [illegible]— भिक्षुक । अँचइअ—पीजिये । घरिक—एक घड़ी । दामिनिबरन—गोरे । सुभग—सुन्दर । भावते—अच्छे लगने वाले, प्यारे । [illegible]—तरुण । सरद परब—शरद की पूर्णिमा । स्वेद कन—पसीने की बूँद । थके—स्तब्ध रह गये । सरल सुभायँ—भोलेपन से, सरल स्वभाव से । उडगनाथ—चन्द्रमा । सरोरुह—कमल । मनोज—कामदेव ।

रायरासि—धन की राशि । कौमुदी—चाँदनी । सरुज—रोगी । रूख—वृक्ष । बादि—व्यर्थ । पद-त्राना—जूता । मुनिपट—वल्कल । जटिल—जटाधारी । असन—भोज्य पदार्थ । पटतर जोग—समानता के योग्य, अनुरूप । गद्दबरि—गद्‌गद्‌ । कसन—क्यों न । जौ माँगा पाइय—यदि माँगने से मिले । विधि पाहाँ—ब्रह्मा (के पास) से । तापस वेष काछे—तपस्वी का वेष धारण किये हुये । बराएँ—बचाकर । दाहिन लाये—दाहिनी ओर कर । बटोही—पथिक । सिराइ—बीतना । काऊ—कभी । विटप—वृक्ष । मधुप—भौंरे । विपुल—अनेक । बिरहित बैर—शत्रुता का भाव छोड़ कर । राजिवनैन—कमल के समान नेत्र वाले । बदर—बेर का फल । उदवेगु—उद्वेग, कष्ट । केतू—पताका । संतत—निरन्तर । श्रुतिसेतू—वेदों की मर्यादा । रुख—संकेत । अनी—सेना । बुद्धि पर—बुद्धि से परे । अविगत—अज्ञेय । नेति (न इति—ऐसा)—ऐसा नहीं । निगम—वेद । पेखन—(प्रेक्षण) नाटकीय दृश्य । देखनिहारे—देखने वाले, दर्शक । जेहि देहु जनाई—जिसको आप स्वयं ज्ञान दें । संत-सुर काजा—संतों और देवों के निमित्त । प्राकृत—साधारण । जस काछिय—जैसा स्वाँग बनाया जाय, जैसा वेष धारण किया जाय । अमिअ—अमृत । बोरी—डुबाकर । निकेत—घर । रूरे—सुन्दर । जीहा—जिह्वा । मंत्रराज—राम नाम का महामंत्र । जेवाँइ—भोजन कराकर । काम—वासना । कोह—क्रोध । छोभ (क्षोभ)—अशान्ति । राग—आसक्ति, प्रेम । अन्वय—(जिनके लिये) सुख (और) दुख, प्रशंसा (और) गारी सरिस हो । सरिस—सदृश, समान । गति—पहुँच, मरण । पराव—पराया । बिसेखी—विशेष रूप से, अपनी विपत्ति से भी अधिक मानकर । जिन्ह कइ—जिनकी । लीका—लकीर, साख, धाक । अपबरगु (अपवर्ग)—मोक्ष । सुपासू—सुविधा, आराम । नदी पुनीत—मंदाकिनी से तात्पर्य है ।

पातक-पोतक-डाकिनि—पाप रूपी बच्चों का नाश करने के लिए डाइन के समान, पाप नाशक । । तन कसहीं—शरीर को कष्ट देते या साधते हैं । ठाटू—प्रबन्ध । पय—पयस्विनी, नदी । उत्तर—उत्तर की ओर । नारा—नाला ।

हुआ। कीट—किरीट, मुकुट। विकच—खिला हुआ। प्राची—पूर्व दिशा रूपी माता। अंक—गोद। (२) अवसान—अंत। पादप—वृक्ष। अरुणिमा—लालिमा। पुलिन—नदी का रेतीला तट। अचल—पर्वत। तरणि—सूर्य। तिरोहित—विलीन। (३) कढ़ी—निकली।

६—मैथिलीशरण गुप्त

(१) तेरा बाहर भी...पाता—तू विदेशियों को भी देश वालों के समान प्यार करती है—'वसुधैव कुटुंबकम्' का सिद्धान्त। अन्वय—हे हिमालय तेरा हिया ऊँचा है। ऊँचा—विशाल। दरद—वेदना। आग—कष्ट, पीड़ा। हरा—(१) हराभरा (२) आनन्दित। इन पंक्तियों में भारत माता के हृदय की विशालता की समता हिमालय की उच्चता से की है। धानी—हरा रंग, धान्य (अनाज) युक्त हरे भरे खेतों से। जूझना—(युद्ध) लड़ मरना। (२) आर्द्र—गीला, सरस। सार—लोहा। वल्ली—वेल, लता।

७—जयशंकर प्रसाद

(१) मंदाकिनी......रहा था—स्वच्छ चित्रकूट पर्वत से मंदाकिनी की तरंगें टकरा रही थीं। यहाँ 'तरंग खेल रहा था' प्रयोग व्याकरण की दृष्टि से भ्रष्ट है। चन्द्रातप—चँदोवा। सोम—चन्द्रमा। स्रोत—प्रवाह। कामद कानन—कामनाओं को पूर्ण करने वाला वन, उस वन का ही नाम 'कामद वन' है।

(२) हिमालय के आँगन—आर्यावर्त। प्रथम किरण (१) ऊषा क प्रथम किरणें, (२) ज्ञान का प्रथम प्रकाश। आलोक—प्रकाश, ज्ञान का प्रकाश। संसृति—संसार, सृष्टि। वाणी—सरस्वती। सप्तसिंधु—सिंधु की पाँच सहायक, सिंधु स्वयं एवं प्राचीन सरस्वती नदी जो भयलुप्त हो गई है—इन सात नदियों का प्रदेश। साम—सामवेद। अरुण केतन—लाल झण्डा, 'लाल झण्डा हाथ में लेकर' से यहाँ अभिप्राय 'क्रान्ति का संदेश' से है।

वरुण-पथ — समुद्र। अभीत — निडर। पुरन्दर — इन्द्र। पवि — वज्र। एक निर्वासित — श्री रामचन्द्र। रत्नाकर — समुद्र। स्वर्ण भूमि — लंका। पूत — पवित्र।

८—सुमित्रानन्दन पन्त

(१) शुचितर — अधिक पवित्र। मुकुल — कली। मानस — हृदय। मधुमय — मधुर, आनन्दमय। (२) इस कविता में बादलों के द्वारा ही विभिन्न रूप से वर्णन कराया गया है—

सुरपति — इन्द्र। जगत्प्राण — वायु। शिखी — मोर। सत्वर — शीघ्र। वही — वायु। कल्पना से — कल्पना के समान; संसार में कल्पनाओं की कोई सीमा नहीं, इसी प्रकार आकाश में बादल कितने प्रकार के रूप धारण करते हैं इनकी कोई गणना नहीं कर सकता। अनन्त — ईश्वर, आकाश। मतंगज — हाथी (के समान)। सजग — चौकन्ना। शशक — खरगोश। समुद — आनन्द में। शुचि — पवित्र। ज्योत्स्ना — चाँदनी। इंदु — चन्द्रमा। अनिल विलोड़ित — वायु द्वारा मथे हुये। उपल — ओले। रजत — चाँदी। अभिराम — सुन्दर। ललाम — सुन्दर। दमयन्ती सी...ललाम — सुन्दरी दमयन्ती के कोमल हाथों पर बैठकर एक सोने के हंस ने उससे उसके प्रियतम राजा नल का मधुर सन्देश कहा था। कुमुदनी को यहाँ दमयन्ती कहा है। शरद ऋतु के स्वच्छ एवं श्वेत बादल चन्द्रमा की किरणों के सम्पर्क से सुनहले से प्रतीत होते हैं—ये ही स्वर्ण हंस हैं। व्योम विपिन में......पात — वसंत ऋतु में तमाल के गहरे रंग के पत्ते गिर जाते हैं और वनों में उनमें नये पल्लव दिखाई देते हैं। ठीक इसी प्रकार आकाश रूपी वन में प्रातः काल के समय तमाल के पत्तों के समान घना अंधकार नष्ट हो जाता है और रंग-बिरंगे बादल वसन्त के नूतन पल्लवों के समान वायु के प्रवाह में हिलते डोलते से दिखाई देते हैं। बाल हंस — (१) बाल सूर्य, (२) हंस का बच्चा।

अवदात अम्बर—निर्मल आकाश में। स्वर्ण पंख—सूर्य की किरणों से सु
बादल। द्रुत—शीघ्र। मारुत से बात करते हैं—हवा से बातें करते हैं,
वेग से उड़ते हैं। अछोर—छोर या अन्तहीन। मोह से—ममता के सम
घोष—गर्जन। विप्लव—उपद्रव। विभवभूति—सांसारिक ऐश्वर्य।

९—सुभद्रा कुमारी चौहान

(१) गुमी—लुटती हुई। छबीली—सुन्दरी। आराध्य—पूज
विरुदावली—यश गाथा। गम से थीं बेजार—शोक से विकल थीं।
की—अन्तःपुर की। अन्तरतम—हृदय। चेती—सावधान हुई, ज
जुर्म—अपराध। कुर्बानी—बलिदान।

(२) सोना बरसता है—आनन्द मंगल है। असार—जिसमें कुछ
सार नहीं। जीवन की प्याली खाली होती जाती है—जीवन बीतता जाता
पर मैं...मतवाली—पर मैं तो प्रतिक्षण आनन्द में मस्त रहती हूँ। हैं
सूत्र......घन—सूर्य की किरणों से कभी-कभी बादलों की कोर सुनहली प्र
होती है, उसी प्रकार मेरी असफलता ही मुझे आशा का प्रकाश दि
जाती है।
